योगविद्या

वर्ष 12 अंक 12
दिसम्बर 2023

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2023

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट:
श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सत्यम् के प्रति उनके गुरु, स्वामी शिवानन्द जी के उद्गार

मेरा वास्तविक उत्तराधिकारी स्वामी सत्यानन्द है, क्योंकि मेरे आशीर्वाद और ईश्वर की कृपा के अलावा उसके पास कुछ भी नहीं। वह यहाँ से नंगे पैर निकल रहा है, केवल इसलिए कि मैंने उसे एक आदेश दिया है – योग के सन्देश को द्वारे-द्वारे तीरे-तीरे फैलाओ। मेरा यह सच्चा उत्तराधिकारी ही समस्त विश्व में शिवम् की ज्योति प्रसारित करेगा।

– स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

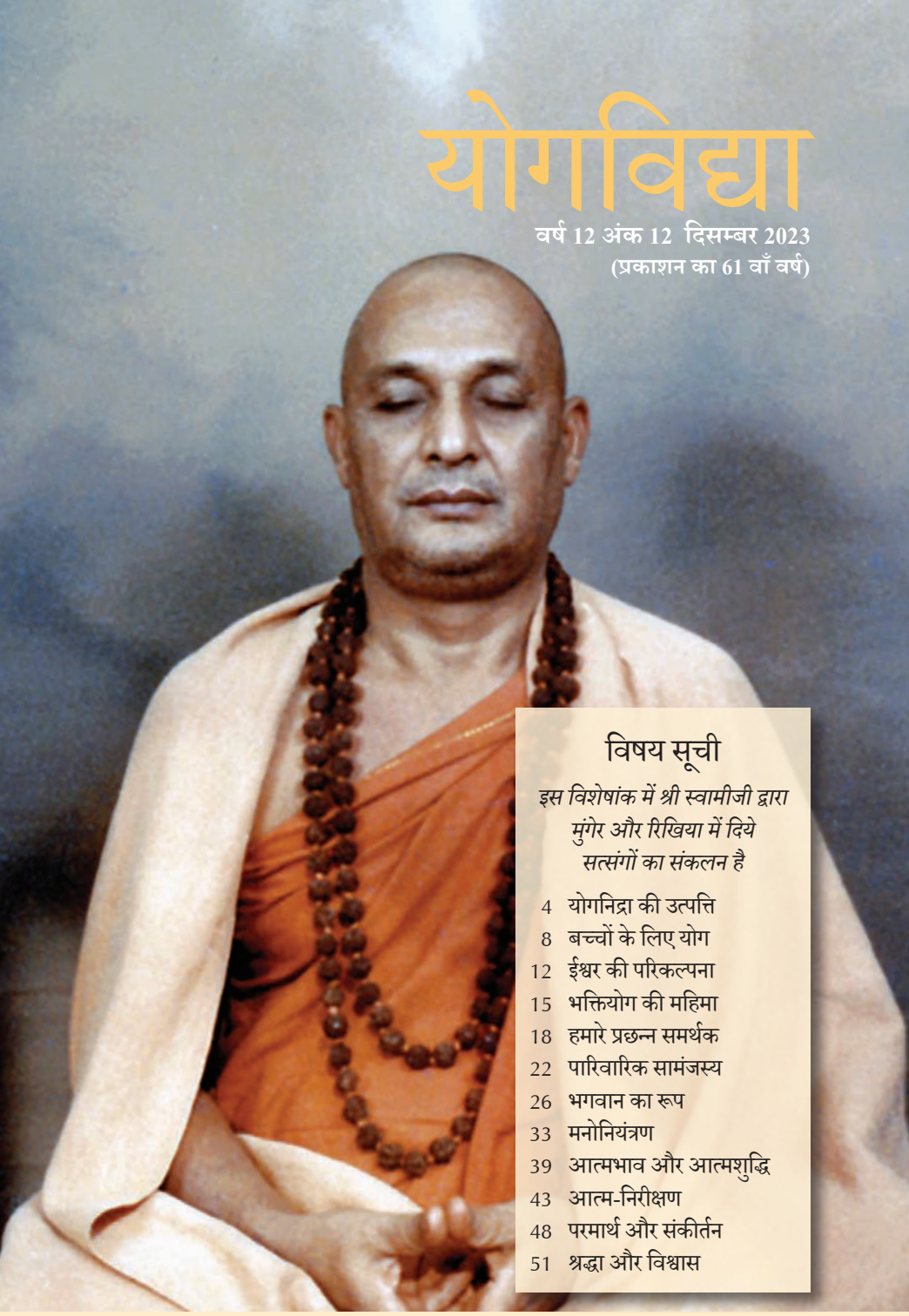

योगविद्या

वर्ष 12 अंक 12 दिसम्बर 2023
(प्रकाशन का 61 वाँ वर्ष)

विषय सूची

इस विशेषांक में श्री स्वामीजी द्वारा मुंगेर और रिखिया में दिये सत्संगों का संकलन है

4 योगनिद्रा की उत्पत्ति
8 बच्चों के लिए योग
12 ईश्वर की परिकल्पना
15 भक्तियोग की महिमा
18 हमारे प्रछन्न समर्थक
22 पारिवारिक सामंजस्य
26 भगवान का रूप
33 मनोनियंत्रण
39 आत्मभाव और आत्मशुद्धि
43 आत्म-निरीक्षण
48 परमार्थ और संकीर्तन
51 श्रद्धा और विश्वास

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

योगनिद्रा की उत्पत्ति

जब मैं ऋषिकेश में रहता था, आश्रम के पास एक संस्कृत विद्यालय था। स्वामी शिवानन्द जी विद्यालय के प्राचार्य का बड़ा सम्मान करते थे। उस काल में केवल ऐसे गरीब बच्चे ही संस्कृत सीखते थे, जिनके पास कोई काम नहीं होता था। वे लड़के विद्यालय आते थे और जब उनके गुरुजी अनुपस्थित होते, तो आश्रम की वस्तुएँ लेकर भाग जाते थे। इसलिए जब भी आचार्य महोदय बाहर जाते, स्वामीजी मुझे पाठशाला की चौकीदारी पर लगा देते थे। मैं अपने बिस्तर पर लेट जाता और तीन बजे सुबह तक जागता रहता। उसके बाद गहरी निद्रा में सो जाता था। विद्यार्थीगण चार बजे उठते, नित्यकर्म तथा पूजा-अर्चना करते थे, परन्तु मैं गहरी नींद में होता था, इसलिए कभी उनकी प्रार्थना नहीं सुन पाता था। मैं छह बजे सुबह जागकर शिवानन्द आश्रम चला जाता था। मुझे यह पता भी नहीं रहता था कि विद्यार्थियों ने कौन-से मंत्र और स्तुतियों का पाठ किया था।

एक बार मैं पास के किसी आश्रम में एक कार्यक्रम में सम्मिलित हुआ, जिसमें इन ब्रह्मचारियों ने संस्कृत के श्लोकों में मंगलाचरण का पाठ किया। इन श्लोकों को सुनकर मुझे ऐसा लगा कि मैंने इन्हें कहीं सुना है, लेकिन मुझे यह याद नहीं आया कि मैंने इन्हें कब और कहाँ सुना था। मैंने उन्हें पढ़ा या लिखा भी नहीं था। पता नहीं क्यों, मुझे बार-बार ऐसा लगता था कि मैंने उन्हें अवश्य कहीं सुना है। बहुत माथा-पच्ची करने पर भी मैं नहीं समझ पाया तो मैं उनके आचार्य के पास गया। उन्होंने कहा कि जब सुबह ब्रह्मचारी मंगलाचरण का पाठ करते, तो मैं उन्हीं के पास गहरी निद्रा में सोया रहता था। इन श्लोकों को मेरा सूक्ष्म मन ग्रहण करता रहता था। उनका सीधा-सच्चा उत्तर ही योगनिद्रा का जन्म था।

इसके बाद मैं सूक्ष्म शरीर की श्रवण प्रक्रिया तथा उसकी क्षमता के बारे में गहराई से विचार करता रहा। बाद में जब मैंने तंत्रशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ किया और स्वयं पर प्रयोग किया तब मैंने देखा कि सूक्ष्म शरीर को सिखाया तथा प्रशिक्षित किया जा सकता है। मुझे विश्वास हो गया कि जिस तरह जाग्रत व्यक्ति को सिखाया-पढ़ाया जा सकता है, उसी तरह सूक्ष्म शरीर को भी निद्रावस्था में सिखाया जा सकता है।

कुछ समय बाद जब मैं मुंगेर नगर में रहने लगा तो किसी व्यक्ति ने मुझे एक टेप-रिकॉर्डर दिया। उसकी सहायता से मैं योगनिद्रा के प्रयोग एक ऐसे लड़के पर करने लगा, जो भैंसे की तरह सोता था। वह निद्रा में इतना बेहोश रहता था कि यदि उसे एक कमरे से उठाकर दूसरे में डाल दिया जाता तो भी उसे कुछ पता नहीं चलता था। जैसे ही वह सोता मैं उसके पास गीता तथा पुराणों के श्लोकों का पाठ करता था, अंग्रेजी में संभाषण करता था। उसके साथ मेरे ये प्रयोग पाँच माह तक चलते रहे। उस बालक का नाम स्वामी निरंजन है। वह कभी किसी स्कूल या कॉलेज में नहीं पढ़ा, लेकिन आज वह अंग्रेजी में धाराप्रवाह प्रवचन देता है। यदि आप उसे सुने तो अनुभव करेंगे कि योगनिद्रा में सिखाई गई बातों का मन पर कितना स्थायी प्रभाव पड़ता है।

यहाँ मैं शिक्षा व्यवस्था या शिक्षण की विधियों की आलोचना नहीं कर रहा हूँ। मेरा तात्पर्य आपको यह समझाना है कि योगनिद्रा में जब व्यक्ति सुप्त प्रतीत होता है तब उस समय उसका सूक्ष्म शरीर जागता रहता है। यह सूक्ष्म शरीर आदेशों और संस्कारों के प्रति आश्चर्यजनक रूप से ग्रहणशील होता है।

मनोविज्ञान के अपने अध्ययन के दौरान मुझे यह मालूम हुआ कि सैन्य विशेषज्ञ भी प्रायः इसी तकनीक का प्रयोग करते हैं। वे बार-बार कुछ निश्चित बातों को दुहराकर युद्ध बंदियों की चिन्तन-प्रक्रिया में आमूल परिवर्तन करते हैं। कुछ ऐसी ही बात साम्यवाद में भी देखने को मिली, जिसमें बार-बार यह दुहराते हैं कि 'कौए सफेद होते हैं' या 'गधों के सींग होते हैं'। जाग्रत अवस्था में कोई भी इन बातों को स्वीकार नहीं कर सकता, परन्तु यदि सूक्ष्म शरीर के समक्ष इन बातों को बार-बार कहें तो कोई भी मीन-मेख निकाले बिना इन्हें स्वीकार कर लेगा। बाद में पुनः यदि आप इन बातों को बोलेंगे तो जाग्रत अवस्था में भी वह इस पर कोई आपत्ति नहीं करेगा। संसार में मस्तिष्क मार्जन की जितनी भी तकनीकें हैं, वे सब योगनिद्रा के सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

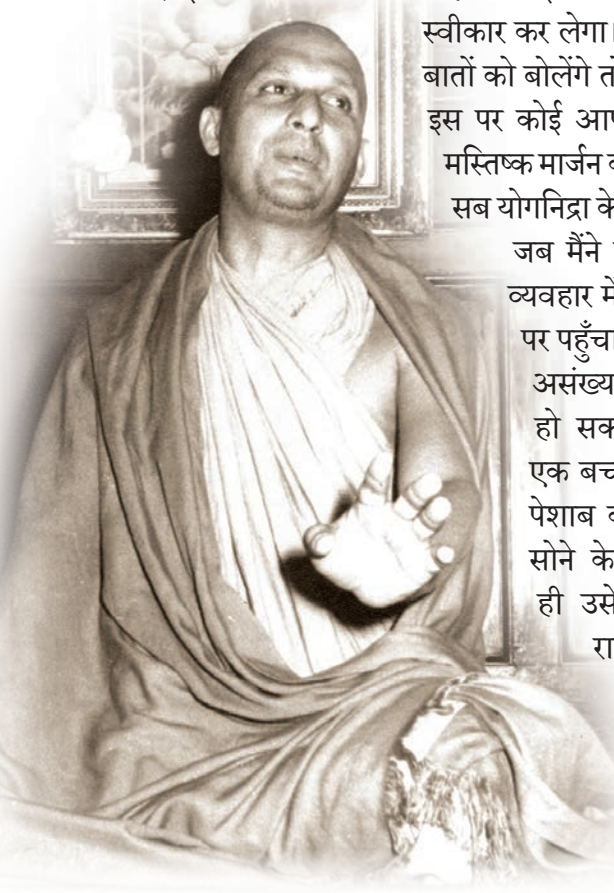

जब मैंने योगनिद्रा के सिद्धान्तों को व्यवहार में उतारा तब मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि योगनिद्रा के प्रयोगों से असंख्य पीड़ित-जनों का उपकार हो सकता है। कल्पना कीजिये, एक बच्चा रोज रात्रि में बिस्तर पर पेशाब कर देता है। रात्रि में उसके सोने के दो-तीन मिनट के भीतर ही उसे उठाकर कहिये, 'सुनो, रात में जब भी तुम्हें पेशाब लगे, शौचालय में जाकर करना।' कुछ ही दिनों में आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि बच्चे में बड़ा परिवर्तन आ गया है।

एक संभ्रान्त परिवार की महिला अपने पति के मद्यपान की आदत से बहुत परेशान थी। मैंने उससे कहा कि अपने पति से भूलकर भी मद्यपान की आदत छोड़ने का आग्रह न करे। वह स्वयं बाजार जाकर उसके लिए मदिरा खरीदे और यदि वह आग्रह करे तो स्वयं भी मद्यपान में उसका साथ दे। मेरी बात सुनकर वह सोच में पड़ गई और भयभीत हो गयी कि उसके समान संभ्रान्त महिला को कहीं मैं पतन के गर्त में तो नहीं ढकेल रहा हूँ, परन्तु उसने इस उम्मीद के साथ मेरी आज्ञा का पालन किया कि संन्यासियों के शब्दों से चमत्कार हो सकता है। कुछ दिनों के बाद मैंने उसे अपने पति को योगनिद्रा कराने की सलाह दी। वह योगनिद्रा में उसे कुछ अच्छी बातें बताने तथा सलाह देने लगी। हालाँकि उसके पति ने इन बातों को पसंद नहीं किया, किन्तु उन्हें स्वीकार अवश्य कर लिया।

तंत्र शास्त्र में न्यास करते समय एक मंत्र दुहराया जाता है – *करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः, अंगुष्ठाभ्यां नमः* आदि। इस मंत्र का उद्देश्य प्राणशक्ति को संचालित करके उसे शरीर के विशेष अंगों पर ले जाना है। जब हमारा चेतन मन निद्रावस्था में होता है तब अचेतन मन अधिक जाग्रत रहता है। उस समय वह बड़ा ग्रहणशील होता है। यदि आप कोई संकल्प लें तो वह अवश्य पूरा होता है। यह अभ्यास बड़ा महान् और गूढ़ है, इसलिए भूलकर भी इसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। तुच्छ भौतिक वस्तुओं के लिए योगनिद्रा का संकल्प, चूहे को मारने के लिए मशीनगन के प्रयोग जैसा है। यदि आप दूसरों का अहित करने के लिए संकल्प करेंगे तो इसका प्रभाव दूसरों की अपेक्षा आप पर ही पड़ेगा। अतएव भूल कर भी योगनिद्रा का प्रयोग क्षुद्र कार्यों के लिए न करें।

जब मुझे तंत्र शास्त्र की इस महान् साधना के रहस्य का पता चला तो व्यापक जनहित की दृष्टि से मैंने इसे सरल बना दिया। जब मैं योगनिद्रा का प्रयोग मरीजों पर करता हूँ तब उनके शरीर और मन गहन विश्राम पाते हैं। सभी तनाव दूर हो जाते हैं तथा उनकी चेतना और सूक्ष्म शरीर ऊर्जा से आवेशित हो जाते हैं। यही ऊर्जा उन्हें बीमारियों को पराजित करने की शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करती है। हृदयाघात, कैंसर और अनेक मानसिक व्याधियों के लिए योगनिद्रा के व्यापक सफल प्रयोग किये जा रहे हैं। इनके उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुए हैं। मैंने योगनिद्रा के अभ्यास को इतना सुगम बना दिया है कि भविष्य में कोई भी व्यक्ति इसके द्वारा निश्चित रूप से अपने सभी मानसिक, शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक और पारिवारिक तनावों से छुटकारा पा सकता है।

–1976, मुंगेर

बच्चों के लिए योग

भारत में परम्परागत रूप से आठ से दस वर्ष की अवस्था में योग के अभ्यास सिखाये जाते हैं। हिन्दुओं के यहाँ बच्चों के लिए इस अवस्था में एक यज्ञोपवीत संस्कार होता है जिसमें उन्हें सूर्य नमस्कार, नाड़ी-शोधन प्राणायाम और गायत्री मंत्र की शिक्षा दी जाती है। यह परम्परा आज भी छोटे पैमाने पर प्रचलित है, किन्तु योग को औपचारिक शिक्षा पद्धति में सम्मिलित किया जाना आवश्यक था। विद्यालयों में योग के पाठ्यक्रम को सम्मिलित करने वाला पहला व्यक्ति मैं हूँ।

मैंने बच्चों की समस्याओं का अध्ययन किया है। उनकी अनेक अस्पष्ट और अनभिव्यक्त समस्यायें होती हैं। वे अपनी समस्याओं को सही ढंग से अभिव्यक्त नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी अभिव्यक्त करने की क्षमता, और उनमें मनोविज्ञान का पर्याप्त ज्ञान नहीं रहता है। इसलिए बच्चे सामान्य रूप से अपनी समस्याओं को अपने व्यवहार द्वारा प्रकट करते हैं और जब तक कोई मनोविश्लेषक बच्चों के व्यवहार का अध्ययन न करे, वह सही निदान नहीं कर सकता है। अधिकतर माता-पिता के लिए यह अत्यन्त कठिन हो जाता है, क्योंकि वे मनोविश्लेषक नहीं होते हैं। वे बच्चों की समस्याओं पर आत्मपरक

ढंग से विचार करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि बच्चा उद्दण्ड और अवज्ञाकारी है तो माता-पिता उस पर अवज्ञाकारी का ठप्पा लगा देंगे, पर वे उसकी अवज्ञा के कारणों की गहराई में नहीं जाते हैं। यदि बच्चा घर में टिकना नहीं चाहता है तो माता-पिता उसे आवारा कह देते हैं। एक मनोविश्लेषक कारणों का विश्लेषण करने का प्रयास करता है, जबकि अधिकतर माता-पिता ऐसा नहीं कर सकते। इसका कारण यह नहीं कि वे विश्लेषण करना नहीं जानते, बल्कि इसलिए कि वे माता-पिता हैं, उनमें पूर्वाग्रह होता है।

मैंने पाया है कि सात से बारह वर्ष की उम्र में बच्चों की कुछ प्रवृत्तियों में असन्तुलन रहता है। शारीरिक विकास और मनोवैज्ञानिक विकास एक साथ पूरे नहीं होते। यहाँ मैं मनोवैज्ञानिक विकास का उपयोग मस्तिष्क, स्नायुतंत्र और अन्तःस्रावी तंत्र के संदर्भ में कर रहा हूँ। कभी-कभी शारीरिक विकास मानसिक विकास से पहले हो जाता है, तो कभी मानसिक विकास शारीरिक विकास की अपेक्षा पहले होता है। बच्चों की समस्याओं का यही मूल कारण होता है।

बच्चों की समस्याओं को हमें नैतिकता और सदाचार के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि बच्चे में एड्रिनल स्राव अधिक होता है तो बच्चा सदा भयभीत रहेगा। वह कठोर व्यक्ति का सामना नहीं कर सकेगा। यदि उसके शिक्षक बहुत गम्भीर और अनुशासनप्रिय हैं, तो वह सदैव आशंकित और डरा रहेगा। उनके सामने नहीं जाना चाहेगा और उनके विषयों में भी रुचि नहीं लेगा। इस स्थिति में समस्या का कारण नैतिक या सदाचार का नहीं है, यह सामाजिक भी नहीं है, यह नितान्त मनोकायिक है। इसमें हमें मात्र उसके एड्रिनल स्राव में सन्तुलन लाना है। निश्चित रूप से अगर हम उन बच्चों की समस्याओं को हल करना चाहते हैं तो शरीर तंत्र में हॉर्मोनों के भावनात्मक प्रभावों का अध्ययन करना होगा। ऐसी ही समस्यायें थायरॉयड और एड्रिनल हॉर्मोनों में असन्तुलन से उत्पन्न होती हैं।

सात या आठ वर्ष की आयु में मस्तिष्क के भीतर पीनियल ग्रन्थि का ह्रास होने लगता है और जब यह प्रक्रिया एक निश्चित सीमा तक बढ़ जाती है तब यौन हॉर्मोन शरीर में सक्रिय हो जाते हैं। समय आने पर पीनियल ग्रन्थि बच्चे में यौन-चेतना तथा सम्बद्ध भावनात्मक और मानसिक विशेषताओं के तीव्र विकास को रोके रहती है। जैसे ही पीनियल ग्रन्थि का पूरा ह्रास हो जाता है, भावनात्मक विकास अत्यन्त तीव्र हो जाता है, और बच्चे के लिए समंजन करना कठिन हो जाता है। बच्चे के जीवन में भावनात्मक समंजन की समस्या

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और यदि हम शारीरिक विकास की अपेक्षा भावनात्मक विकास को विलम्बित कर सकें तो बच्चे में स्थिरता बढ़ जाती है। ऐसा करने के लिए हमें पीनियल ग्रन्थि का स्वास्थ्य ठीक रखना होगा, और इसके लिए शांभवी मुद्रा का अभ्यास बहुत उपयोगी है।

पीनियल ग्रन्थि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिसे योग में आज्ञा चक्र के रूप में जाना जाता है जो मस्तिष्क में मेडुला-ऑबलॉन्गाटा के शीर्ष पर अवस्थित रहता है। यह एक अत्यन्त छोटी ग्रन्थि है और एक ताले के समान कार्य करती है। जब तक पीनियल ग्रन्थि स्वस्थ है तब तक अराजक यौन-व्यवहार नहीं होता। जब तक बच्चा अपने अन्दर यौन चेतना की प्रतिक्रियाओं को संतुलित करने योग्य न हो जाये, यौन चेतना विकसित नहीं होनी चाहिए। जब तक यौन-सम्बन्धी कल्पनाओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता बच्चे में नहीं आ जाती है तब तक इन कल्पनाओं के विकास से बच्चे को हानि होती है। कभी-कभी उसे डरावने, भयानक, बेतुके और भ्रामक स्वप्न आ सकते हैं। इसके साथ ही, दैनिक जीवन में इन सजगताओं को दबाने के लिए वह ऐसे व्यवहार करता है जिसे बड़े लोग पसन्द नहीं करते। यौन चेतना की समय से पूर्व परिपक्वता बच्चे के मन को लगभग तोड़ देती है। लड़कियों में जब यौन हॉर्मोनों का स्राव प्रारम्भ होता है तब स्तनग्रन्थि, डिम्ब ग्रन्थि और गर्भाशय, सब सक्रिय हो जाते हैं। अब यदि पीनियल ग्रन्थि बहुत पहले निष्क्रिय हो जाये तो समस्यायें प्रारम्भ हो जाती हैं, लड़की अशान्त हो जाती है, क्योंकि वह इस परिवर्तन को अभिव्यक्त करने हेतु परिपक्व नहीं होती।

आन्तरिक रूप से आज्ञाचक्र को प्रभावित करने तथा सही समय के पूर्व यौन परिपक्वता को विलम्बित करने के लिए शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करना लाभदायक रहेगा। अभ्यास को अधिक रुचिकर बनाने के लिए हम बच्चे को मानस दर्शन करने के लिए भी कहते हैं। इस अभ्यास में लगभग पचास चीजों के नाम लेते हैं और बच्चे को एक-एक कर उनका मानस दर्शन करने को कहते हैं। जैसे, लाल गुलाब, बहती हुई नदी, बर्फ से ढका एक पहाड़, उड़ता हुआ हवाई जहाज, अमरूद का पेड़, एक मंदिर आदि को कहते और देखते हुए वह अपनी सजगता को बनाये रखता है।

मानस दर्शन की वस्तुओं में तीन प्रकार की चीजें रहती है। वस्तुओं की प्रथम श्रेणी में वे चीजें होती हैं जिन्हें बच्चे ने देखा है, दूसरी श्रेणी में वे वस्तुएँ होती हैं जिन्हें बच्चे ने नहीं देखा है और तीसरी श्रेणी में अमूर्त धारणायें होती

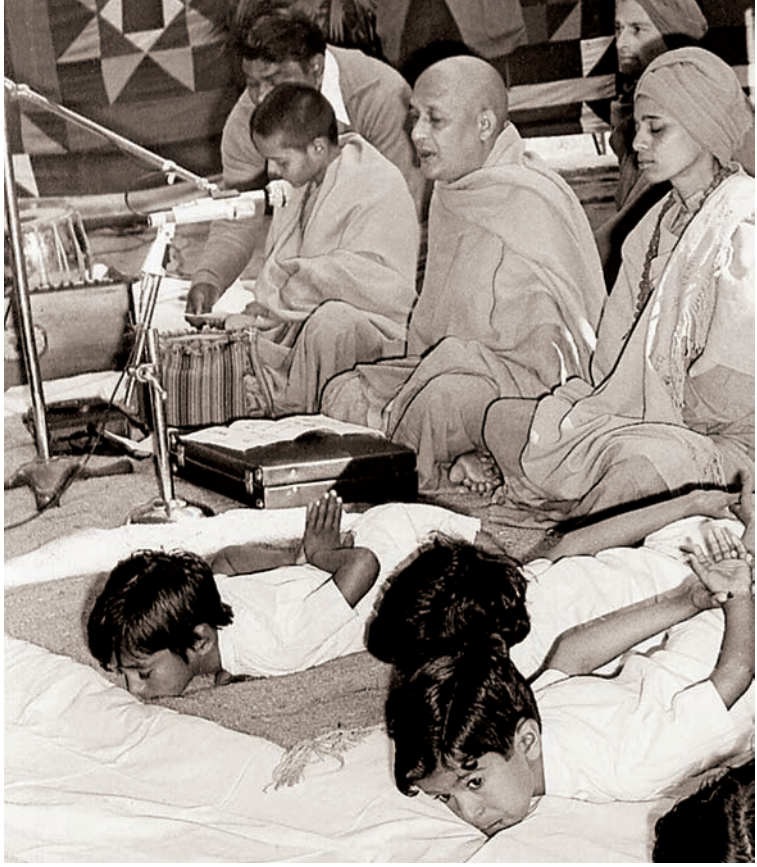

हैं, जैसे प्रेम, घृणा इत्यादि। यह अभ्यास न केवल बच्चों को मनोभावनात्मक सन्तुलन बनाये रखने में सहायता करता है, बल्कि उनके मानस दर्शन की क्षमता को बढ़ाता है। बाद में, जब वह विद्यालय में भूगोल, इतिहास या गणित पढ़ता है उस समय उसका मन कल्पनाशील रहने के साथ-साथ चिन्तनशील भी रहता है।

यद्यपि इसके लिए हमारे पास ठोस वैज्ञानिक प्रमाण नहीं हैं, फिर भी मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि योग का अभ्यास पीनियल ग्रन्थि को स्वस्थ बनाये रखने के साथ-साथ जीवन को अतिरिक्त आयु भी प्रदान करता है। इसीलिए हमारे भारत में सूर्य नमस्कार, नाड़ी-शोधन प्राणायाम (पीनियल ग्रन्थि को सन्तुलित एवं स्वस्थ रखने हेतु), बच्चे के विचलित मन को सन्तुलित करने हेतु मंत्र तथा पीनियल ग्रन्थि को सक्रिय रखने हेतु मानस दर्शन के साथ शांभवी मुद्रा सिखाते हैं।

– जुलाई 1978, मुंगेर

ईश्वर की परिकल्पना

सृष्टि के प्रारम्भ से, जब मनुष्य ने सत्य के विषय में सोचना प्रारम्भ किया, तब से उसने ईश्वर की अपनी परिभाषा गढ़ना और अनुमान करना भी प्रारम्भ कर दिया। निस्संदेह मनुष्य के बौद्धिक और मानसिक विकास के अनुसार ये परिभाषायें समय-समय पर बदलती रहीं। उसके समक्ष जब वर्षा हुई और बादल गरजा तो मनुष्य ने सोचा कि गर्जन ही ईश्वर है। जब मनुष्य वनों में रहता था और प्रत्येक प्रातःकाल सूर्य का उदय होता था तो वह अन्धकार से त्राण पाता था और सोचता था कि सूर्य ही ईश्वर है। जब लोगों में बीमारियाँ फैलतीं और कोई आध्यात्मिक उपचार करता तो उसे ही ईश्वर मान लिया जाता।

इस प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य ने ईश्वर के लाखों-करोड़ों रूपों की कल्पना की है। फिर उसने सोचा राजा या सम्राट् ईश्वर था, क्योंकि वह सर्वाधिक शक्तिशाली मनुष्य था। तथापि संतों, संन्यासियों और महात्माओं ने शीघ्र ही लोगों से कहना प्रारम्भ किया कि उन्होंने ईश्वर की जो अवधारणाएँ बना रखी हैं, वे उनके अपने मनोवैज्ञानिक प्रक्षेपण का परिणाम हैं, ईश्वर न पुरुष था, न स्त्री, न पशु और न पर्वत, वह बिजली की कौंध, वर्षा, सूर्य, चन्द्र, भूकम्प या सागर भी नहीं था। वह चरम अनुभव था जो अतीन्द्रिय था।

अतीन्द्रिय अनुभव के तीन रूप हैं – अनुभवकर्त्ता, अनुभव की प्रक्रिया और अनुभव। अब ये तीनों त्रिरूप के भिन्न-भिन्न नाम थे। वास्तव में कोई त्रिरूप नहीं है, केवल एकरूप है, परन्तु मनुष्य ने उस एकरूप को त्रिरूप बना दिया। जब आप एक चित्र पर दृष्टि डालते हैं, आप चित्र के प्रति सजग होते हैं, और आप इसके प्रति भी सजग होते हैं कि आप देखने वाले हैं और देखने की एक प्रक्रिया भी होती है। इसलिए एक सामान्य व्यक्ति की तरह आप तीन पूर्ण अनुभवों – द्रष्टा, बोध और दृश्य के प्रति सजग रहते हैं। इसी कारण त्रिरूप का दर्शन होता है; पर वास्तव में ईश्वर न एक है, न अनेक।

अब एक क्या है? एक अंक है, दो अंक है, और तीन भी अंक है। एक और एक का योग दो होता है, एक जोड़ एक जोड़ एक तीन होता है। हम ईश्वर को 'एक' के रूप में मानते हैं, पर वस्तुतः ईश्वर अनन्त हैं। अनन्त क्या है? इसकी सीमा नहीं है, इसका न आदि है, न अन्त है। एक वृत्त अनन्त होता है, क्योंकि इसका न आदि है, न अन्त है। एक रेखा और एक बिन्दु अनन्त

नहीं हैं, क्योंकि उनका आरम्भ और अन्त होता है। अंक 'एक' सीमित है, परन्तु वह 'एक' जो अनन्त है, ईश्वर की सही परिभाषा है।

गणित के अनुसार एक जोड़ एक दो होता है और एक घटाव एक, शून्य होता है, परन्तु दर्शन शास्त्र के अनुसार एक जोड़ एक, एक ही होता है और एक घटाव एक भी एक ही होता है। गणित सीमित है। गणित में 'एक' सीमित है, पर दर्शन में 'एक' अनन्त, असीम होता है। ईश्वर अनन्त है, अतः वह गणित का एक नहीं है। जब आप बोलते हैं कि ईश्वर एक है, तो गणित को भूल जाइये, क्योंकि एक ईश्वर जोड़ एक ईश्वर, एक ही ईश्वर होता है।

इसलिए जब आप कहते हैं कि ईश्वर एक है तो इसे अवश्य समझिये कि इस एक का अर्थ क्या है। यदि यह गणित का एक है तब ईश्वर एक, दो और तीन है, पर यदि ईश्वर एक दर्शन है तो वह मात्र एक है। वह क्राइस्ट, राम, कृष्ण या बुद्ध के रूप में प्रकट हो सकता है, पर वह है मात्र एक ही। ऐसा कैसे होगा? मान लें आप सोने का एक टुकड़ा लेते हैं और उससे एक हार, कंगन या कर्णफूल बनाते हैं। यह अभी भी सोना ही है, उपादान तो वही रहता है, केवल उसका नाम और रूप भिन्न होता है। जब ईश्वर भिन्न रूप लेता है तो भी वह ईश्वर ही रहता है। यह केवल वही है, उसके रूप और नाम बदल गए हैं। यदि वह भारत में जन्म लेता है तो वह हिन्दू है, यदि येरुशलम में पैदा होता है तो यहूदी है, और स्पेन में जन्म लेता है तो ईसाई है। हिन्दू, यहूदी और ईसाई तो मानव प्रदत्त नाम हैं, उपादान तो एक ही है। उपनिषदों के अनुसार ईश्वर की सत्ता की दो अवस्थायें होती हैं – एक है अनुभवातीत और दूसरी है सर्वव्यापी। जिसका आप मन में अनुभव करते हैं, वह है सर्वव्यापी और जिसका आपके मन द्वारा अनुभव न हो सके वह है अनुभवातीत। अनुभवातीत ईश्वर 'तत्' अर्थात् 'वह' शब्द से निर्दिष्ट होता है और ईश्वर की सर्वव्यापी अभिव्यक्ति 'इदम्' अर्थात् 'यह' शब्द द्वारा होती है।

अब 'इदम्' क्या है? समस्त सृष्टि 'इदम्' है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, समस्त प्राणी, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी सभी इदम् हैं। तत् वह है जिसका सृजन नहीं हुआ है, इदम् वह है जिसका सृजन हुआ है। ईश्वर के ये दो स्वरूप हैं। समस्त सृष्टि ईश्वर की अभिव्यक्ति है। यह वैसा ही है जैसे एक अभिनेता मंच पर भिखारी, राजा, सैनिक या योद्धा की भूमिकाओं में आता है। उसी प्रकार आप एक ही मन से अनेक भिन्न-भिन्न चित्र बनाते हैं। जिस प्रकार मन अनेक रूपों में अभिव्यक्त हो सकता है, उसी प्रकार यह पृथ्वी और ईश्वर भी विभिन्न रूपों में प्रकट हो सकते हैं। दूध से आप अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बना सकते हैं, पर वे सभी उसी दूध के विभिन्न रूप होते हैं। कपड़े के एक टुकड़े से आप अनेक प्रकार के परिधान बना सकते हैं, पर वे सभी एक ही वस्त्रखण्ड के विभिन्न स्वरूप होते हैं। उसी प्रकार यह समस्त सृष्टि ईश्वर की अभिव्यक्तियाँ हैं और 'इदम्' कहलाती हैं।

'तत्' सृष्टि नहीं है। हम नहीं जानते कि 'तत्' क्या है। कोई नहीं जानता है, वह मन, बुद्धि, तर्क और कल्पना के परे है। 'तत्' के लिए मन के बाहर निकलना होगा। आपको समाधि में प्रवेश करना होगा, मन का अतिक्रमण करना पड़ेगा। 'तत्' वह वस्तु है जिसके लिए हम आध्यात्मिक जीवन की साधना करते हैं।

इस प्रकार ईश्वर की दो अभिव्यक्तियाँ हैं, एक है अनुभवातीत और दूसरी है अनुभवाश्रित। सभी मनुष्य अनुभवाश्रित को जानते हैं, प्रतिदिन उसकी महिमा को देखते हैं, पर 'तत्' को कोई नहीं जानता। यह जगत्, सृष्टि, आप और मैं असत्य नहीं हैं, यह सत्य उस 'तत्सत्' का प्रतिबिम्ब है। आप अपने जिस चहरे को दर्पण में देखते हैं वह वास्तविक नहीं है, वह आपका अपना प्रतिबिम्ब है। निस्संदेह वह वास्तविकता नहीं है, वह वास्तविकता की छवि है। हम लोग वास्तविकता की छवि हैं, हम असत् नहीं हैं। वास्तव में हम भी अनन्त हैं। इसीलिए संत कहते हैं – 'मैं और मेरे पिता एक हैं'। वेदान्त में कहा गया है – 'शिवोऽहम', 'अहं ब्रह्मास्मि'। लेकिन केवल शिवोऽहम् कहना पर्याप्त नहीं है। यह कहने का कोई प्रयोजन नहीं है कि 'मैं और मेरे पिता एक हैं', क्योंकि हमने इसका अनुभव नहीं किया है। योग, ध्यान और समाधि के द्वारा आप 'शिवोऽहम्' को अवश्य अनुभव करें।

– दिसम्बर 1979, मुंगेर

भक्तियोग की महिमा

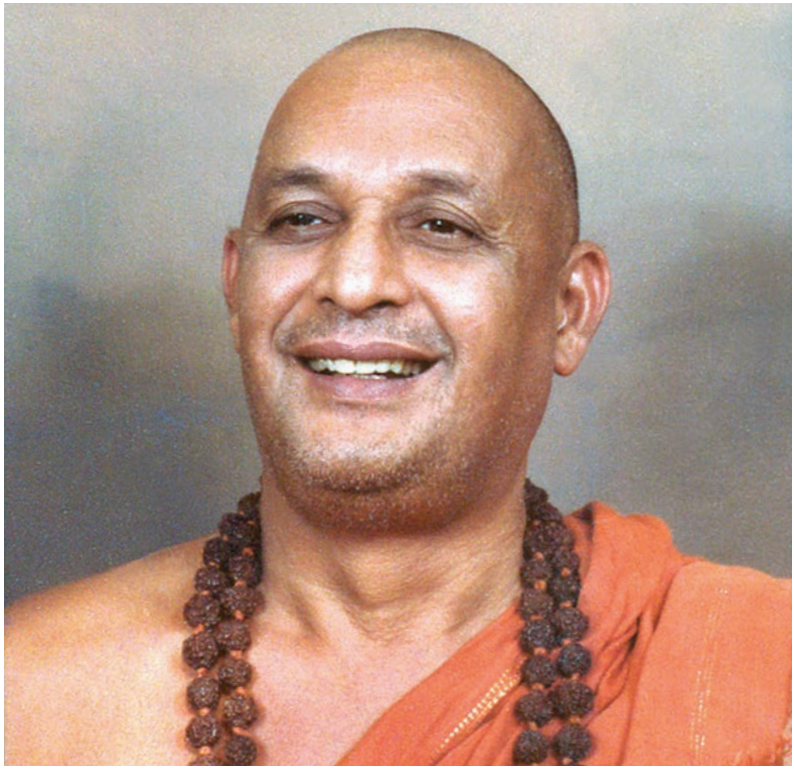

भक्तियोग में भावना का समावेश होता है तथा सजगता ईश्वर की ओर उन्मुख होती है। आपके समर्पण का लक्ष्य इष्ट-देवता, गुरु, संत, महात्मा अथवा कोई अन्य प्रतीक हो सकता है। जब भी आपका मन अस्तित्व के सूक्ष्म स्तरों की ओर पूर्ण समर्पण भाव से मुड़ता है तो उसे भक्ति कहते हैं। जब वे ही वृत्तियाँ इन्द्रियों के द्वारा बाहरी जगत् की ओर दौड़ती हैं, वे शुद्ध हों या अशुद्ध, तो उसे भक्ति नहीं, चित्तवृत्ति कहते हैं।

यदि आप सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से प्रेम करते हैं तो आपका प्रेम समग्र होना चाहिए और उसके प्रतिदान की आशा नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार भक्तियोग में भौतिक वस्तुओं के प्रति प्रेम को ईश्वर की ओर मोड़ दिया जाता है। आप ईश्वर के पवित्र नाम का गायन, उनके स्वरूप का चिन्तन, उनकी

महानता तथा उदारता का विचार कर भाव-विभोर हो उठते हैं और इस प्रकार की स्मृति को हृदय में बनाये रखते हैं। ऐसा आप सांसारिक वस्तुओं के विषय में भी अपने दैनिक जीवन में करते हैं। यह बहुधा उस समय होता है, जब आपको इन वस्तुओं से लगाव होता है। तभी तो दुःख, पीड़ा, निराशा और वियोग जीवन में बार-बार आते हैं। परन्तु जब आप अपने हृदय और मन को पूरी तरह ईश्वर को समर्पित कर देते हैं तो आप पूर्णरूपेण सन्तुष्ट रहते हैं तथा मन में तृप्ति का भाव बना रहता है। भक्तियोग जीवन की महान् उपलब्धि है। यदि वह स्वयमेव आपके जीवन में प्रकट होती है तो यह मानिये कि आप भौतिक जीवन के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गये हैं। आपको अपनी विकास-यात्रा की मंजिल मिल गई है।

जैसा कि अधिकांश लोग समझते हैं, भक्ति कोई सामान्य अथवा सहज वस्तु नहीं होती। जहाँ तक मेरा अनुभव है, मैंने इसे बड़ी कठिन उपलब्धि पाया है। भक्ति सिखाई नहीं जा सकती है। वह व्यक्ति के भीतर अपने आप उत्पन्न होती है। आप बौद्धिक भक्त नहीं हो सकते। बुद्धि और भक्ति परस्पर विरोधी चीजें हैं। बहुत-से लोग यही गलती करते हैं। संसार में सभी बातें सीखी जा सकती हैं – यहाँ तक कि बिना अधिक प्रयास के निर्विकल्प समाधि भी लगाई जा सकती है, परन्तु थोड़ी-सी भक्ति करना कहीं अधिक कठिन कार्य है। यदि आपमें भक्ति-भाव है तो पलक झपकते ही आप स्वयं को दूसरे लोक में ले जा सकते हैं। इसके लिये अधिक समय तथा श्रम की आवश्यकता नहीं होती।

भक्ति को कैसे विकसित किया जाए? श्री रामकृष्ण परमहंस कहते हैं कि आपको अपने समग्र अनुभव को दिशान्तरित करना होगा, तभी आपके भीतर भक्ति पनपेगी। जिस प्रकार अपनी पत्नी, पति, बच्चे, माँ, धन-सम्पत्ति और स्वयं से प्यार करते हैं, इन सबके प्रति प्यार को ईश्वर के लिये समर्पित करना होगा। तत्क्षण इसी स्थान पर वे यहाँ होंगे।

ज्ञानी को ईश्वर कहीं भी ढूँढने से नहीं मिलता, परन्तु भक्त के भगवान कण-कण में विद्यमान रहते हैं। भक्ति, भक्त को पूरी तरह बदल देती है। वह सामान्य व्यक्ति की तरह नहीं होता। यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात याद रखिये कि भक्ति में द्वैत भाव होता है। उसमें प्रेमी और प्रेमास्पद होते हैं। भक्त कभी इस द्वैत से पृथक् नहीं होना चाहता।

एक बार योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अपने शिष्य उद्धव को गोपियों को योग सिखाने के लिए गोकुल भेजा। वहाँ गोपियों ने उनसे पूछा, 'श्रीकृष्ण कैसे

हैं? तुम कैसे आए हो?' उद्धव ने उत्तर दिया, 'श्रीकृष्ण की चिन्ता न करें, मैं आप लोगों को योग सिखाने आया हूँ। हम लोग कल से योगाभ्यास प्रारम्भ करेंगे।' एक चतुर गोपी ने उनसे पूछा, 'आप हमें कौन-सा योग सिखायेंगे? हमारे पास सिर्फ एक मन, एक सजगता है, जो द्वारिका में श्रीकृष्ण के पास चले गये हैं। अब आप ही बताइये कि आप किस मन को योग का प्रशिक्षण देंगे?' यदि आपका मन गोपियों के मन की तरह एकाग्र है तो फिर आपको कोई भी योग सीखने की आवश्यकता नहीं है।

तंत्र हो या कर्मयोग, राजयोग अथवा ज्ञानयोग, सबकी चरम परिणति भक्ति में होती है। जिस प्रकार हिमालय के विभिन्न स्थानों से निकलने वाली सभी नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार मानव चेतना की समग्रता, जिसमें चेतना और मन के सभी आयाम सम्मिलित हैं, भक्ति में समाहित हो जाते हैं। एक बार साधक को भक्ति उपलब्ध हो जाए तो फिर संसार में ऐसा कुछ नहीं रह जाता जिसे प्राप्त करने के लिए उसे प्रयत्न करना पड़े। भक्ति कोई कपोल-कल्पना नहीं है, यह नाम-रूप-विहीन, देश-काल से परे भावातीत परमपिता के सम्मुख होने का अचूक साधन है।

– मार्च 1980, मुंगेर

हमारे प्रछन्न समर्थक

जो साधु, संन्यासी और तपस्वी हिमालय में रहकर साधना में लीन रहते हैं, वे किस प्रकार समाज तथा मनुष्यों के विकास में सहायक होते हैं?

हर विज्ञान के क्षेत्र में कुछ ऐसे समर्पित लोग होते हैं जो उसमें पूर्णता प्राप्त करने के उद्देश्य से अपना जीवन अर्पित कर देते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति समाज में ही रहे। यदि सभी समाज में रहें तो विज्ञान के शोध तथा उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जायेगा।

समय-समय पर योगीगण अज्ञातवास में चले जाते हैं, ताकि वे न केवल स्वयं पूर्णता प्राप्त करें, बल्कि अपनी आत्मा का दर्शन तथा अनुभव भी प्राप्त कर सकें। वे जिस ज्ञानराशि के स्वामी होते हैं वह उन्हें पुस्तकों से नहीं, बल्कि स्वानुभव से उपलब्ध होती है। कभी-कभी कुछ वीतराग संन्यासी अपने एकान्तवास से इसलिए बाहर आते हैं कि वे अपने अनुभवों का लाभ दूसरों तक पहुँचा सकें। अनेक संन्यासी तो गिरि-कंदराओं में ही निरन्तर गहरे ध्यान में लीन रहते हैं। वे स्वयं में विश्वव्यापी सजगता का विकास कर एक प्रकार के जेनरेटर का काम करते हैं, जो अपनी ज्ञान-रश्मियाँ विश्व के कोने-कोने में विकीर्ण करता है। जैसे प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक पूर्ण समर्पित भावना से कार्य करते हुए स्वयं को तथा अपने परिवार को भूल जाते हैं, वैसे ही ये दिव्यात्माएँ महान् उद्देश्य के लिये कार्य करती हैं।

अधिकतर लोग समाज में इसलिए रहते हैं कि अन्य लोगों के बिना उनका काम नहीं चल सकता। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनमें दूसरों के साथ घुलने-मिलने अथवा समाज में रहने की दिलचस्पी नहीं होती। ऐसे लोगों को एकाकी कहते हैं। इतिहास में कभी भी ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं रही है। इनका इस दुनिया में आने का विशिष्ट उद्देश्य होता है। ऐसे लोग कुछ समय या सदा के लिए एकान्त में चले जाते हैं। वे अपनी तपस्या के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति करते हैं।

याद रखिये, मनुष्य के जीवित रहने के लिए मात्र भोजन तथा वस्त्र ही आवश्यक नहीं होते। यद्यपि हम उन्हें प्राप्त करने का प्रयास तो करते हैं, तथापि वे हमारी सर्वोपरि आवश्यकता नहीं हैं। संन्यासी इस बात से परिचित होते हैं। वे वस्त्र केवल इसलिए पहनते हैं कि समाज में निर्वस्त्र रहना अशोभनीय होता

है। अन्य लोग तो इसलिए कपड़े पहनते हैं, क्योंकि वे दूसरों को प्रभावित करना चाहते हैं या सोचते हैं कि वस्त्र पहनना अनिवार्य है। कुछ ही लोग ऐसे होते हैं जो यह महसूस करते हैं कि मनुष्य की सर्वोपरि आवश्यकता मन की पूर्णता है।

मनुष्य निरन्तर कुछ खोज रहा है। इन्द्रिय भोगों में लिप्त रहने के बावजूद उसका असन्तुष्ट रहना यह दर्शाता है कि वह इससे भी महान् किसी अन्य वस्तु की तलाश में है। आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि मनुष्य में अनेक दुर्गुण हैं और वह सर्वत्र अपूर्णता का दर्शन करता है। मैं हीरे की खोज में तो हूँ, परन्तु उसे पहचानता नहीं। मुझे अनेक चमकीले पत्थर मिले हैं जिन्हें मैं हीरा समझकर बटोरता हूँ। उन्हें कुछ समय तक अपने पास रखने के बाद मैं फेंक देता हूँ, क्योंकि वे मुझे अनावश्यक लगते हैं। कुछ समय बाद मुझे गुरु मिलते हैं। वह मुझसे पूछते हैं, 'क्या तुम्हें हीरे की तलाश है?' तब मैं सचेत होकर सोचने लगता हूँ कि अभी तक मुझे हीरे की तलाश थी, संभवतः इसी कारण मैंने चमकीले पत्थरों को फेंक दिया था।

एक अच्छी पत्नी अथवा पति आपको क्यों सन्तुष्ट नहीं कर सकते? आपकी विशाल धनराशि आपको वांछित सुरक्षा क्यों नहीं प्रदान कर पाती? जीवन में सब कुछ पाकर भी आप असन्तुष्ट क्यों रहते हैं? त्रुटि जीवन में नहीं है। आपके असंतोष का मुख्य कारण यह है कि आपको जिसकी तलाश है, वह धन, परिवार तथा सुख-सुविधाओं से नहीं मिल सकता। जो लोग खुद से ऐसे प्रश्न पूछते रहते हैं, वे ही कालान्तर में हिमालय की गिरि-कंदराओं में चले जाते हैं।

हिमालय क्षेत्र में जीवन बड़ा कष्टमय होता है। अनेक लोग तो वहाँ की कठिनाइयाँ सहन न कर सकने के कारण लौट आते हैं, तो कुछ लोग बीमार पड़ जाते हैं और उन्हें मजबूरन लौटना पड़ता है। वे लोग जो शरीर और मन से मजबूत होते हैं, वहाँ रह पाते हैं तथा वे दीर्घकाल तक अपार कष्टों को सहते हुए गहन साधना करते हैं।

अनेक वर्ष पूर्व जब मैं गंगोत्री गया तो मुझे वहाँ एक स्वामी कृष्णाश्रम जी से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनकी अवस्था एक सौ उन्तीस वर्ष

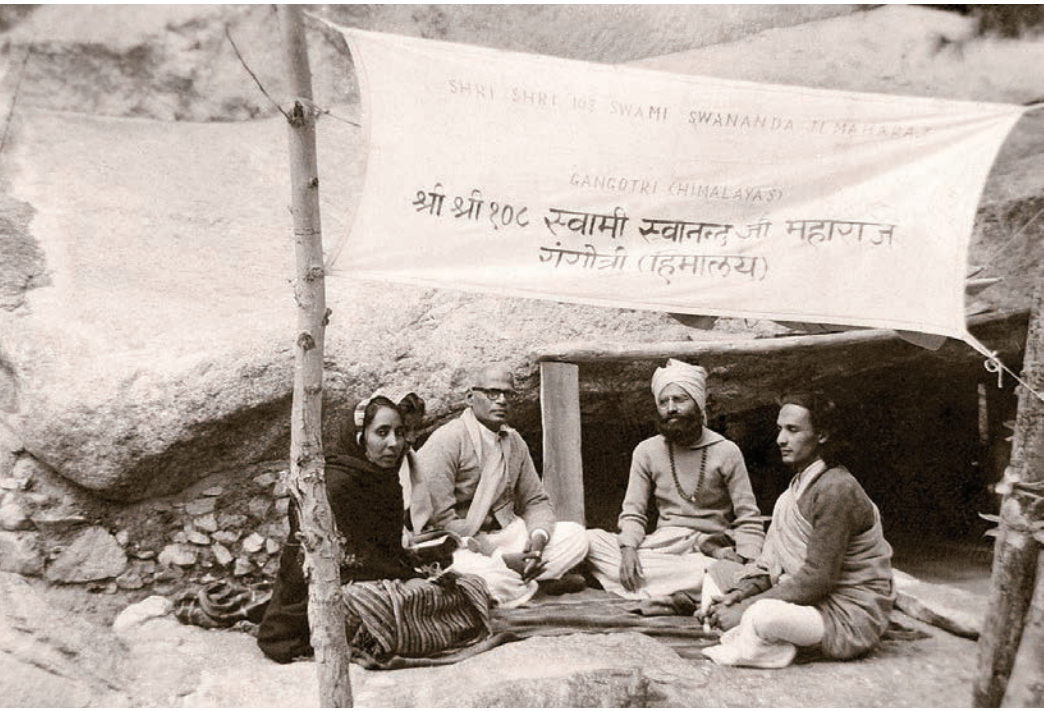

थी और वे एक शताब्दी से मौन थे। यही प्रश्न जो आपने मुझसे पूछा है, उन्हें देखकर मेरे मन में भी उठा। मुझे लगा कि मानव-चेतना के उत्थान में इन महापुरुषों का क्या योगदान हो सकता है। परन्तु मैंने स्वयं को इस प्रश्न का उत्तर देने का अधिकारी नहीं समझा, इसलिए मैं चुप ही रहा। समय बीतता गया। मैंने देखा कि लोगों का मन और आध्यात्मिक जीवन बुरी तरह दूषित हो गया है।

आप डीज़ल तथा कोयले के धुएँ और शोरगुल की ध्वनि द्वारा वायुमंडल के दूषित होने की चर्चा करते हैं, परन्तु क्या कभी आपने इस विषय पर विचार किया है कि आधुनिक मानव का मन किस प्रकार बुरी तरह दूषित हो गया है? इसका शुद्धिकरण कैसे होगा? बाह्य प्रदूषण को वृक्षारोपण तथा कल-कारखानों के अपशिष्ट पदार्थों में कमी लाकर रोका जा सकता है, परन्तु आप मनुष्य के आंतरिक प्रदूषण को रोकने की व्यवस्था किस तरह से करेंगे? क्या आज के मनुष्य का मन अपवित्र नहीं हो गया है, क्या आज उसमें से बदबू नहीं आ रही है? आपको इस मुद्दे पर मुझसे सहमत होना पड़ेगा कि आज उन उपायों की बहुत आवश्यकता है जिनसे मानव का अन्तःकरण शुद्ध हो सके।

योगी तथा महात्मा आज इसी कार्य में व्यस्त हैं। उनमें से अनेक अपने घर-परिवार की उपेक्षा इसलिए करते हैं कि उनका लक्ष्य एक महान् कार्य को सिद्ध करना है। कुछ तो घर-गृहस्थी के जंजाल में फँसना पसन्द नहीं करते। ये लोग सामाजिक कार्यों, अस्पतालों, राहत कार्यों आदि में योगदान तो नहीं करते, परन्तु ये महाशक्तिशाली होते हैं और गुमनाम रहते हुए समाज को महान् योगदान देते हैं। वे मानव-चेतना को निरंतर आगे बढ़ाने में सहारा देते हैं। उनका कार्यक्षेत्र समूचा विश्व होता है।

जब आप किसी भव्य इमारत को देखते हैं तो मात्र उसके बाह्य स्वरूप से ही आकर्षित होते हैं। क्या कभी आप उसकी नींव पर भी विचार करते हैं? इस समाजरूपी अट्टालिका की नींव ये महान् योगी-महात्मा हैं और उसका बाह्य स्वरूप विश्व मानवता है। हमें आपका सौन्दर्य, आपका योगदान और आपकी उपलब्धियाँ दिखलायी पड़ती हैं, परन्तु हम यह नहीं देख पाते कि आपको जो संबल और सहयोग मिल रहा है उसका स्रोत कहाँ है।

– 20 जनवरी 1981, मुंगेर

पारिवारिक सामंजस्य

परिवार में सामंजस्य और सौहार्द बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक सदस्य का मन सन्तुलित हो और वह योगाभ्यास करता हो। ऐसे अनेक परिवार हैं जिनके सभी सदस्य योगाभ्यास करते हैं, फिर भी उनमें समझ-बूझ तथा आत्मीयता का अभाव रहता है। इसके लिए एक अन्य तथ्य पर भी विचार करना आवश्यक है। परिवार में या तो पति-पत्नी का योग के प्रति एक जैसा दृष्टिकोण हो अथवा उनमें आपसी समझ-बूझ हो। ऐसा परिवार खोजना बड़ा मुश्किल है जिसके सभी सदस्यों के सोचने-विचारने का ढंग एक जैसा हो।

हिन्दू परिवारों में आप अक्सर देखेंगे कि एक सदस्य योगाभ्यास करता है, परन्तु अन्य सदस्यों को उसमें विश्वास नहीं होता। फिर भी इससे आपसी सम्बन्ध प्रभावित नहीं होते। इसका कारण यह है कि हिन्दू मानते हैं कि हर व्यक्ति अपना कर्म तथा प्रारब्ध लेकर पैदा होता है, परन्तु पाश्चात्य देशों में वस्तुस्थिति इससे भिन्न होती है। वहाँ या तो पति पत्नी को अपनी विचारधारा में ढालने का प्रयत्न करता, या पत्नी पति को अपने अनुकूल बनाना चाहती है। हमें एक भी ऐसा जोड़ा दिखाई नहीं पड़ता जहाँ ऐसी रस्साकशी न होती हो। इसका परिणाम यह होता है कि पति-पत्नी के मधुर सम्बन्ध तनावपूर्ण हो जाते हैं। परिवार बिखरने लगता है, यहाँ तक कि तलाक की भी नौबत आ जाती है।

हमारे भारत में हिन्दू-मुसलमानों के बीच भी विवाह सम्बन्ध स्थापित होते हैं, परन्तु वहाँ भी पति-पत्नी के बीच टकराव नहीं होता। वे समझते हैं कि यद्यपि जीवन की परिस्थितियों ने उन्हें आपस में निकट ला दिया है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वे दोनों एक ही साँचे में ढले हों। परिवार के सब सदस्यों के लिये यह कतई आवश्यक नहीं है कि वे एक धर्म, गुरु अथवा विचारधारा को मानें। इसका यह भी तात्पर्य नहीं कि एक व्यक्ति यदि निरामिष भोजी है तो अन्य भी वैसे ही हों। चूँकि एक मदिरापान करता है तो यह जरूरी नहीं कि दूसरा भी करे। पाश्चात्य लोगों के मन में परिवार के सदस्यों को अपने जैसा बनाने की जो हठधर्मिता है इसे दूर करना बहुत जरूरी है।

पश्चिम के लोग योगाभ्यास करते हैं तो सामान्य वैवाहिक यौन सम्बन्धों से भागने लगते हैं। वस्तुतः पश्चिम में यौन सम्बन्धों की धारणा पाप पर आधारित है। वहाँ इसे कभी भी आत्मविकास के उपादान के रूप में नहीं स्वीकारा गया।

सम्भवतः यही कारण है कि जब पश्चिम का कोई व्यक्ति योग-साधना की गहराई में उतरता है तो उसके मन में छिपी अपराध की भावना ऊपर आती है और वह अति पवित्रतावादी बन जाता है। वह कहता है, 'मैं योगी हूँ, मांस नहीं खाता तथा पत्नी के साथ नहीं रहता।' मैं यह नहीं कहता कि हर व्यक्ति को मांस-मदिरा का सेवन करना चाहिए। आखिर हम सब एक जैसे नहीं हैं। पूरी सृष्टि त्रिगुणात्मक है। बहुत कम लोग सतोगुणी होते हैं, उससे अधिक तमोगुणी होते हैं और रजोगुणी लोगों की संख्या तो बड़ी विशाल है।

यदि रजोगुणी बहुसंख्यक हैं तो हमें अपनी दार्शनिक विचारधारा में उन्हें समुचित स्थान देना होगा। यदि मैं स्वभाव से रजोगुणी हूँ, परन्तु प्रदर्शन यह करूँ कि मैं सतोगुणी हूँ, तो इससे मेरा मन तथा व्यक्तित्व खंडित होगा और मैं सिज़ोफ्रेनिया से ग्रस्त हो जाऊँगा। पश्चिम में इस मनोव्याधि के व्यापक प्रसार का यही कारण है। वहाँ लोग पाखण्ड और वास्तविकता से बुरी तरह खंडित हैं। मान लीजिए, मैं स्वयं रजोगुणी हूँ। मेरा भोजन और समाज भी रजोगुणी है। घर की साज-सज्जा, नृत्य, संगीत आदि सबके सब रजोगुण प्रधान हैं, परन्तु मैं एक सतोगुणी व्यक्ति की तरह रहना चाहता हूँ। इस खींचातानी का परिणाम यह होता है कि मेरे परिवार के सभी सदस्य तनावग्रस्त हो जाते हैं। अब इस विषम परिस्थिति में योग बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, परन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि आप योग को धर्म अथवा अतिपवित्रतावादी दृष्टि से न देखें। योग मन और आत्मा की मुक्ति की तकनीक है। यदि आप प्रतिदिन सुबह थोड़ा आसन, प्राणायाम, जप तथा एकाग्रता का अभ्यास करते हैं तो इसमें आपके साथी के पास शिकायत का कोई कारण नहीं होना चाहिए। परन्तु यदि आपने योगाभ्यास अभी-अभी प्रारम्भ किया है और आप स्वयं को गुरु, योगी अथवा संत मान बैठते हैं, तो निश्चय ही इससे आपके परिवार में समस्याओं की बाढ़ आ जायेगी। आपका जीवनसाथी तथा बच्चे आपके इस व्यवहार से अपने भविष्य तथा सुरक्षा के लिये खतरा अनुभव करेंगे।

यदि आप स्वयं को योगी मान बैठते हैं और अपने बच्चों को रेडियो सुनने अथवा टेलीविजन देखने से रोकते हैं, तो यह निश्चित जानिये कि आप उनके कोपभाजन बनेंगे। हो सकता है यह आपकी दृष्टि में बुरा हो, परन्तु आप अपना दृष्टिकोण उन पर थोपकर उन्हें इससे क्यों वंचित करते हैं? इसके विपरीत, यदि आपके बच्चे योगाभ्यास करते हैं तो उनसे ऐसा मत कहिए कि चूँकि वे योगाभ्यास करते है, इसलिये उन्हें ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए।

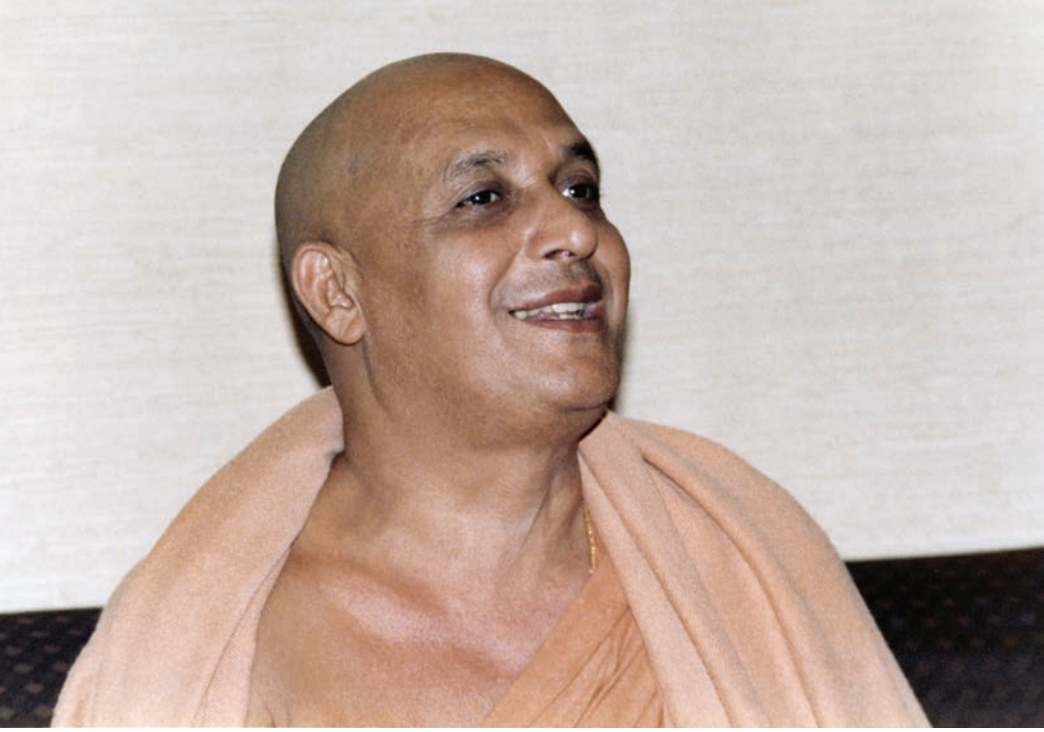

यदि आप अपने सामान्य दैनिक जीवन में योग द्वारा हस्तक्षेप नहीं करते हैं तो इससे आपके परिवार तथा जीवन में समस्वरता और आपसी समझ बढ़ेगी।

भारत में पति-पत्नी की विचारधारायें तथा आस्थायें भिन्न हो सकती हैं। पति मांसाहारी हो सकता है, पत्नी शुद्ध शाकाहारी होती है, परन्तु इसके बावजूद भी उनके परिवार में सुखद सामंजस्य रहता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि वे धर्म तथा दर्शन को अपना अहम् नहीं बनने देते। यदि कोई व्यक्ति जीवन में ब्रह्मचर्य तथा शाकाहार अपनाता है, तो इससे वह अपने अहम् को बढ़ने नहीं दे। यदि मैं पवित्रता का जीवन जीना चाहता हूँ और आप नहीं चाहते, तो इसका यह मतलब नहीं कि हमारे बीच सहयोग तथा समझदारी नहीं आ सकती। भले ही मैं मांस नहीं खाता, परन्तु आपके लिए पका तो सकता हूँ। आपको इसमें बुरा मानने की जरा भी आवश्यकता नहीं है कि मैं मांस नहीं खाता, और न ही आपका मांस-सेवन मेरे लिए बुरी बात होनी चाहिए।

पारिवारिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति को स्वीकार करना चाहिए कि दो व्यक्ति एक-दूसरे से नितान्त भिन्न होते हैं। किसी खास मौके पर भावना या वासना के वशीभूत होकर हम भले ही यह कहें कि हम आजीवन एक हैं, परन्तु सच्चाई इससे बहुत दूर होती है। पति, पत्नी तथा बच्चे अलग-अलग ईकाई

तथा अलग-अलग जीवात्माएँ हैं। मेरे, मेरी पत्नी तथा बच्चों के कर्म तथा संस्कार निश्चय ही भिन्न हैं। जिस प्रकार हवाई अड्डे अथवा रेलवे स्टेशन पर एकत्रित यात्रियों के गन्तव्य भिन्न होते हैं, उसी प्रकार परिवार के प्रत्येक सदस्य के कर्म और संस्कार भी भिन्न होते हैं। हमें दूसरों के अहम् को आदर देना चाहिए, अथवा एक-दूसरे के लिये अपने अहम् को समर्पित करना चाहिये। परिवार का मुखिया, जो अपने को सबसे अधिक समझदार मानता है, उसे भी अपने अहम् का त्याग करना चाहिए। परिवार में योग की यही महत्त्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। जब तक समझदार लोग परिवार के भीतर अपने अहम् को नहीं त्यागेंगे, विश्व में सामंजस्य तथा हार्दिकता स्थापित नहीं हो सकेगी।

मेरे आश्रम में अनेक लोग ऐसे भी हैं जिनके समक्ष मुझे अपने अहम् को छोड़कर चुप रहना पड़ता है। जब भी लोग मेरे पास आकर कड़वी बातें कहते हैं तो मैं शान्त रहता हूँ, क्योंकि यदि मैं सबसे अधिक समझदार हूँ, तो मुझे शान्त रहना चाहिए। यदि परिवार में दो सदस्य स्वयं को बुद्धिमान मानें तथा आपस में लड़ने लगें तो निश्चय ही परिवार बिखरेगा। परन्तु यदि वे अपने हथियार रख दें तो उसका सुफल पारिवारिक सुख तथा शान्ति होगा। जब आप योगाभ्यास करते हैं तो अपने अहम् को भी बदलते हैं। यहाँ मैं आपको महर्षि पतंजलि के योगसूत्रों का अध्ययन करने की सलाह दूँगा। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि जीवन में समस्याओं का काफिला आता है। इनका उद्गम व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व होता है। उसकी अनेकों समस्याओं का मूल अज्ञान अथवा अविद्या में होता है। अविद्या सजगता का अभाव है। इससे अस्मिता उत्पन्न होती है। अस्मिता का तात्पर्य अहम् से है। फिर अस्मिता से राग और द्वेष आते हैं जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य जीवन से चिपकता तथा मृत्यु से डरता है।

अविद्या का तात्पर्य परिस्थितियों का सही मूल्यांकन न कर सकने से है। यदि कोई आपको अपशब्द कहता है तो आप उसे तुरन्त ब्याज सहित लौटाते हैं। यदि कोई आपकी आलोचना करता है तो आप भी उसकी कटु आलोचना करते हैं। परन्तु यदि आप उस व्यक्ति के सामने चुप रहें तथा पूरी परिस्थिति पर शान्तिपूर्वक विचार करें तो आपको अनुभव होगा कि आपने स्थिति का सही मूल्यांकन नहीं किया था। यदि आप उसका प्रतिरोध न करते और चुप रहते तो कहीं अधिक अच्छा होता। इसलिए यह आवश्यक है कि हम समस्या के मूल पर आघात करें तथा योगाभ्यास द्वारा अविद्या का मूलोच्छेदन करें।

– 6 जनवरी 1981, मुंगेर

भगवान का रूप

भगवान का रूप होता है और भगवान निराकार भी है। अब तुम पूछ सकते हो कि निराकार का रूप कैसा होगा? मिट्टी का क्या रूप होता है? दिया, सकोरा, घड़ा या खिलौना? मिट्टी का अपना कोई रूप नहीं है। जिस रूप में ढाल दो, वही उसका रूप है। सोने का क्या रूप है? अंगूठी या कँगन कहकर तुमने उस आकृति को एक नाम दिया, मगर वह सोने का वास्तविक रूप तो नहीं। सोना रूप रहित है, मिट्टी रूप रहित है। उसी तरह परमात्मा भी रूप रहित है। मगर उसे किसी ने कृष्ण बना दिया, किसी ने राम, और वही उनका रूप हो गया। रामचरितमानस में शंकर जी ने पार्वती से यही कहा है कि भक्तों के प्रेमवश भगवान विभिन्न सगुण रूप धारण किया करते हैं –

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोई कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥

किसी ने उनको योगी के रूप में देखा, किसी ने बावले के रूप में देखा, किसी ने भूत-पिशाच की तरह देखा, गाँजा पीकर मस्त पड़े देखा, शादी करते हुए देखा। ऐसी कोई बात तो नहीं कि न देखा हो। आखिर जिन्होंने देखा है, वे झूठ क्यों बोलेंगे? जो सच है, वह सच है। परमात्मा के सभी रूप होते हैं। इसीलिए उनको 'सर्व रूप रूपाय' बोलते हैं। कठोपनिषद् में कहा गया है –

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥

'जिस प्रकार अग्नि विश्व में आकर जिस वस्तु को जलाती है उसी का रूप धारण कर लेती है, उसी प्रकार आत्मा, जो सभी प्राणियों में एक ही है, एक होने पर भी विभिन्न वस्तुओं का स्वरूप ग्रहण कर लेती है।' यम ने नचिकेता को अपने उपदेश के क्रम मे यही समझाया था।

इस ब्रह्माण्ड में उपस्थित प्रत्येक वस्तु एक ही काल में कई रूपों में अभिव्यक्त होती है। जो कुछ तुम एक स्थूल आकार के रूप में देखते और समझते हो, वह केवल स्थूल नहीं है। मान लो, तुम एक फूल के बारे में विचार

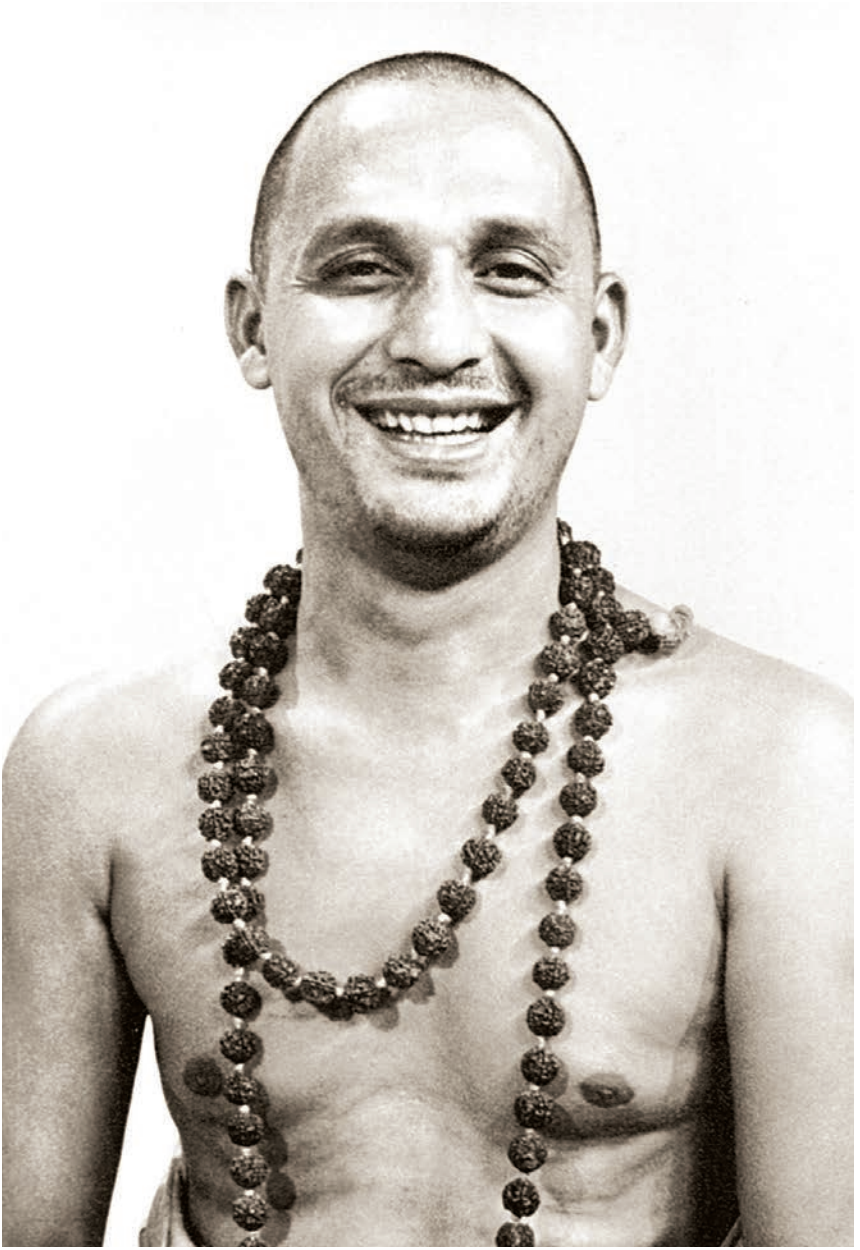

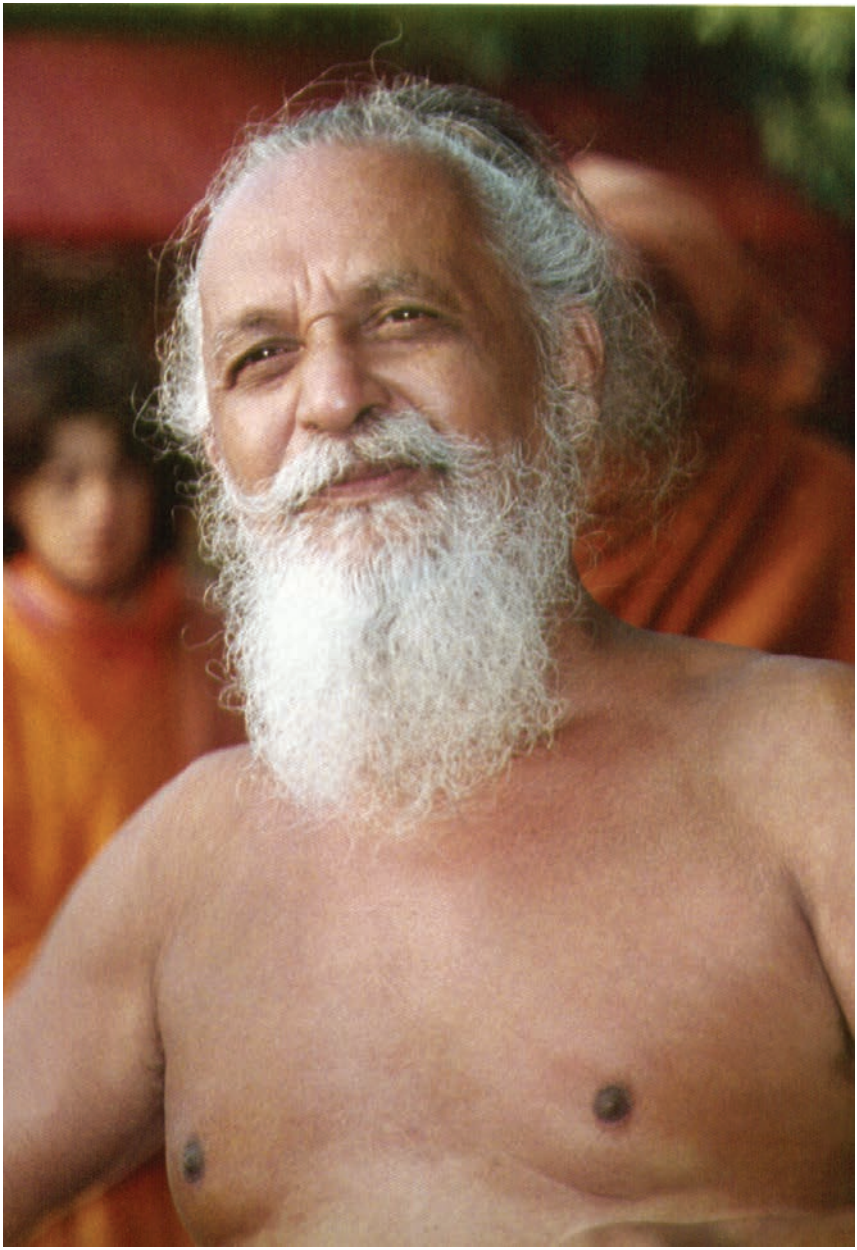

करते हो। फूल को देखने से तो तुमको फूल का स्थूल रूप दिखाई दे रहा है, परन्तु जब फूल के बारे में सोचते हो, कल्पना करते हो, तब वह अनुभव फूल का सूक्ष्म रूप है। वह सूक्ष्म रूप क्या है?

वह तुम्हारे मन की एक अभिव्यक्ति है। जब तुम फूल की कल्पना करते हो, तब वास्तव में अपने मन को ही एक फूल के रूप में देखते हो। जो अनुभव तुम्हारे भीतर हो रहा है, उसके अनेक स्तर हो सकते हैं, जो तुम्हारे मन की गहराई पर निर्भर हैं। तुम स्वप्न में भी 'गुलाब' देख सकते हो और ध्यान में भी, परन्तु दोनों में फर्क है। स्वप्न में मन की एक अवस्था होती है, ध्यान के समय दूसरी। इस प्रकार अनुभवगम्य पदार्थ भी वस्तुतः भिन्न हो जाते हैं। जो गुलाब तुमने स्वप्न में देखा, जो गुलाब तुमने ध्यान में देखा और जो तुमने बाहर पौधे के साथ देखा, ये तीनों अलग-अलग गुलाब हैं। जब तुम्हारा मन बाह्य चेतना से हट कर बहुत गहराई में उतर जाता है तब तुम अपने भीतर उस गुलाब के फूल को उतनी ही स्पष्टता से देख सकते हो जितनी स्पष्टता से तुमने बाह्य गुलाब को देखा था। इसी को अनुभव कहते हैं। वही अनुभव मण्डलाकृति या प्रतीक या अपरोक्षानुभूति कहलाता है। यही अपरोक्षानुभूति शिव का रूप है, तुम्हारी आत्मा के अन्तरतम मर्म का अभिव्यक्तिकरण है।

इसलिए भगवान को तुम सब रूपों में देखो। भगवान को तुम देवी के रूप में, सुन्दर बालमुकुन्द के रूप में, धनुर्धारी राम के रूप में या बंशीधर कृष्ण के रूप में, किसी भी रूप में देख सकते हो। भगवान को जिस रूप में तुम देखना चाहो, उस रूप में उसकी उपासना करो और वही रूप प्रकट होगा। रामचरितमानस में तुलसीदास जी कहते हैं –

जिन्ह के रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

कुछ लोग फिर भी कह सकते हैं कि यह रूप काल्पनिक है। पर कल्पना आखिर है क्या? संसार में कोई भी चीज काल्पनिक नहीं है, हर एक चीज सत्य है। हम तो अपने अनुभव से बोलते हैं। हमको ऐसा लगता है कि भगवान तो अपने दोस्त हैं, सखा हैं, जो हमेशा अपना हित करते हैं, मगर हम ही उनको भूल जाते हैं। स्वामी शिवानन्द जी महात्मा बिन्दु जी का एक भजन गाया करते थे –

जीवन का मैंने सौंप दिया, सब भार तुम्हारे हाथों में।
उद्धार पतन अब मेरा है, सरकार तुम्हारे हाथों में॥

भगवान हमेशा सखा की तरह अपने साथ रहते हैं। स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि भगवान श्वासों के श्वास हैं, प्राणों के प्राण हैं, जीवन की जीवनी शक्ति हैं। वही हमारी एकमात्र वास्तविकता हैं। संसार में यही एक सत्य है। लेकिन बहुत-से लोग अपने आपको संकीर्णता के कारण पृथक् किये रहते हैं। बिजली का करेंट प्रवाहित नहीं हो पाता। माया की वजह से पृथक् रहते हैं। पृथकता के आधार माया को हटा दो, तो भगवान की विद्युत धारा स्वतः प्रवाहित होने लगेगी। इस प्रकार धीरे-धीरे भगवत्-प्रेम प्रगाढ़ और गहरा होता जाता है। जिस तरह एक आशिक अपनी माशूका को सब तरफ देखता है, वैसे ही एक भक्त भगवान को सब जगह देखता है – मुझमें, तुझमें, सब लोगों में।

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

जहाँ देखो तहाँ राम, और जीवन का असली उद्देश्य भी यही है। जीवन में बाकी सब तो मजबूरी में करना पड़ता है। पढ़ना पड़ता है, नौकरी करनी पड़ती है, इच्छाओं को पूरा करना पड़ता है, लेखा-जोखा पूरा करना पड़ता है। यह सब करते हुए भी एक विचार मन में प्रश्न की तरह सदा चलना चाहिए कि किस प्रकार प्रभु के साथ सम्बन्ध स्थापित हो। अगर 'मैं' 'वह' हूँ, तो 'उसे' कैसे जानें? अगर मैं भगवान का अंश हूँ, तो वह अनुभव मुझे क्यों नहीं हो रहा है?

अनुभव होगा भी कैसे। हम लोग भूल चुके हैं कि हम भगवान के अंश हैं। जैसे दिमाग में चोट लगने से आदमी सब भूल जाता है, अपने माँ-बाप के नाम का भी उसे पता नहीं रहता, ऐसे ही हम भी भूल गये हैं, विस्मृति हो गयी है। नौकरी वगैरह जीवन का सार नहीं है। बीस-पचीस साल तक नौकरी है, फिर एक दिन जायेगी। यह तो केवल अहंकार का खेल है, जिसमें हम लोग पड़े रहते हैं। जैसे सूअर को विष्ठा खाने में मजा आता है, वैसे अपने को चक्कर खाने में मजा आता है। यह मत सोचो कि निन्दा कर रहा हूँ, क्योंकि संसार में तो सबको रहना है। संसार कीचड़ है, अब जोंक बनकर रहना है तो जोंक बनो और कमल बनना है, तो कमल बनो। किसी शायर ने कहा भी है –

इन्सान की बदबख्ती अन्दाज के बाहर है।
कमबख्त खुदा होकर बन्दा नजर आता है॥

– नवम्बर 1994, रिखियापीठ

मनोनियंत्रण

मनुष्य की सब से बड़ी समस्या उसका मन है। शरीर उसकी समस्या नहीं है। शरीर में जितनी भी बीमारियाँ होती हैं, रक्तचाप हो, पेचिश हो, खाँसी, सर्दी या बुखार हो, उनमें अस्सी प्रतिशत बीमारियों में मन का योगदान निश्चित रहता है और कुछ बीमारियों में तो सौ प्रतिशत रहता है। किसी का मन ऐसा है तो किसी का वैसा, पर यह समझ लो कि सबके साथ ऐसा ही है। तुम सिर्फ अपने ही बारे में समझते हो, सोचते हो, मगर यदि दूसरे से पूछोगे तो वह भी यही कहेगा। मेरे पास तो आज तक सब यही बोलने वाले आए हैं। मुझसे आज तक किसी ने नहीं कहा कि स्वामीजी मेरा मन ठीक है। सब यही कहते हैं कि स्वामीजी मन में न जाने क्या-क्या होता है। मन का स्वभाव चंचल है। जैसे जल और हवा का स्वभाव बहना है, आग का स्वभाव जलना है, चंद्रमा का स्वभाव शीतलता है, सूर्य का स्वभाव गर्मी है, टट्टी का स्वभाव बास मारना है, वैसे ही मन का स्वभाव चंचलता है। अगर चंचलता नहीं होगी तो मन भी नहीं होगा। मन का निश्चल होना, शांत हो जाना लगभग असम्भव है और मन का एकाग्र हो जाना महादुष्कर काम है।

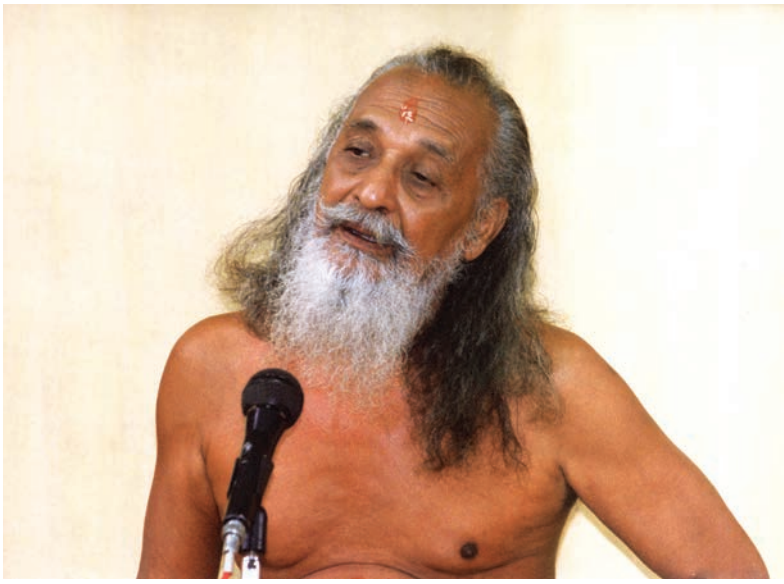

इसलिए कबीरदासजी कहते हैं, *'मैं उन संतन का दास जिन्होंने मन मार लिया।'* जिन्होंने अपने मन को अपने वश में कर लिया वे भगवान हो जाते हैं, राम और कृष्ण वही हैं। मन को वश में करना ही योग का, भक्ति का, मनुष्य के जीवन का लक्ष्य माना जाता है। मगर यह इतना सरल नहीं है, इसलिए मन के बारे में ज्यादा मत सोचो। जितना ज्यादा तुम मन के बारे में सोचोगे तुमको उतनी ज्यादा पीड़ा होगी। मैं किसी एक आदमी की बात नहीं कर रहा हूँ, बल्कि सबकी बात कर रहा हूँ। जो आदमी मन के बारे में ज्यादा सोचता है, उसको ज्यादा पीड़ा होती है। जो आदमी अपने मन के चरित्र के बारे में, मन के चालचलन के बारे में, मन की गतिविधि के बारे में ज्यादा सोचते हैं उनको पीड़ा अधिक होती है। इसलिए मन के बारे में कम सोचो।

कर्मयोग का सिद्धान्त

मन के बारे में सोचने के लिए समय कम मिले, इसलिए भगवान ने कर्म बनाये। कर्म में मन बहिर्मुखी हो जाता है, बाहर चला जाता है। आटा लाना, रोटी बनाना, सब्जी लाना, कपड़ा धोना, बीमार हैं तो डॉक्टर के पास जाना, इन सबसे मन बहिर्मुखी रहता है। जब मन बहिर्मुखी रहता है तब अच्छा लगता है। यद्यपि अन्तिम लक्ष्य अंतर्मुखी करना ही है, मगर मन को प्रारंभिक अवस्था में अंतर्मुखी करने से अवसाद जैसा होने लगता है। यदि तुम्हारा मन अंतर्मुखी है तो अंतर्मुखी स्वभाव वाले को मन की हर गतिविधि से पीड़ा होती है। मन चंचल हो तो पीड़ा होती है, मन शान्त हो तो भी पीड़ा होती है कि मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है, ऐसा लगता है कि कोई चिन्ता ही नहीं है। इसलिए बहिर्मुखी रहो, संसार में मन लगाओ, बाल-बच्चों में मन लगाओ, रसोई घर में मन लगाओ। अंतर्मुखता का काम कम करो। इसलिए हम लोग जब संन्यास लेते हैं तब बारह साल तक अंर्तमुखी न होने देने के लिए कर्मयोग कराया जाता है। कर्मयोग में मनुष्य अपनी इन्द्रियों और मन को बहिर्मुखी रखता है।

मन अकेला कुछ कर ही नहीं सकता, वह तो विद्युतशक्ति की तरह है। अगर बिजली है मगर बल्ब नहीं या तार नहीं तो क्या करोगे? कुछ नहीं कर सकते। उसी तरह मन को अभिव्यक्त करने के लिए इन्द्रियाँ माध्यम हैं। अभी जो तुम देख रहे हो तो कौन देख रहा है? मन देख रहा है। तुम सुन रहे हो तो कौन सुन रहा है? मन सुन रहा है। कौन खा रहा है, कौन सो रहा है, कौन बैठा

है, कौन खड़ा है, कौन दौड़ता है? केवल मन। पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों से मन बाहर झाँकता है। आँख झरोखा है, झरोखा माने खिड़की। इन्द्रियाँ अपने आप में जड़ हैं। टेलीफोन थोड़े ही बात करता है, बात तो आदमी करता है। टेप-रिकॉर्डर का क्या फायदा जब तक टेप नहीं भरोगे? इसलिए हम इन्द्रियों को मन का उपकरण मानते हैं। इन इन्द्रियों को व्यस्त रखने के लिए इनको कर्मयोग में लगाना पड़ता है।

इसलिए वेदों में लिखा है – *ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः, भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः* – रोज तो यह मंत्र पढ़ते हो कि मेरी आँख अच्छा देखे, कान अच्छा सुनें, इन्द्रियाँ अच्छी तरह से कर्मयोग करें। कर्मयोग क्या है? मन लगा कर शारीरिक काम करना, चाहे खुर्पी लगाओ, फावड़ा चलाओ, कुदाल चलाओ, करछुली चलाओ, चाकू से सब्जी काटो, सुई से कपड़ा सिलो, सफाई करो, झाड़ू लगाओ, मकान को साफ रखो, अपना कपड़ा साफ रखो, स्नान करो और यदि काम नहीं हो, तो दूसरे के घर जाकर कुछ करो, गुरु की सेवा करो। इसे कहते हैं कर्मयोग।

विषाद

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को शुरू-शुरू में कर्मयोग ही बताया, ज्ञानयोग तो बाद में बताया। ज्ञानयोग, भक्तियोग और राजयोग, ये सब तो अंतिम अध्यायों में आते हैं और संन्यास तो अठारहवें अध्याय में आता है। पहले आता है विषाद योग। विषाद योग किसे कहते हैं? जब तक मन में विषाद नहीं आएगा, तब तक तुम्हें मन को संभालने की इच्छा ही कैसे आएगी? अगर तुम को विषाद नहीं होता तो तुम मन के बारे में सोचते क्या? मन को संभालने की कोशिश आदमी तब करता है जब उसे विषाद होता है। विषाद नहीं होगा तो तुम्हें मन का ख्याल ही नहीं आएगा। मनुष्य अपने मन को नियंत्रित करने की चेष्टा कब करता है? जब मन उसे बहुत तंग करता है। जब मन तुमको बहुत तंग करता है, तभी तो मन को नियंत्रित करने का मन करता है। इसलिए योग शुरू होता है विषाद से। गीता का पहला अध्याय विषाद योग है, हम लोगों का भी पहला अध्याय विषाद योग है।

विषाद दो तरह का होता है, एक कम और दूसरा अधिक। मौसम में देखते हो न, कहते हैं हवा का दबाव कम है या ज्यादा है। जैसे हवा में कम और ज्यादा दबाव होता है, वैसे ही मन में भी कम और ज्यादा दबाव होता

है। दबाव कब आता है? बच्चे का दबाव, काम का दबाव, दुःख का दबाव, वासना का दबाव, गुस्से का दबाव, लड़की की शादी नहीं हो रही है, उसका दबाव, पैसा नहीं है और लड़का रोज पैसा माँगता है, उसका दबाव। इसे दबाव कहते हैं। वायु में दबाव होता है तो बरसात होती है, वैसे ही जब दिमाग में दबाव आता है, तब मन में कई प्रकार के विचार आते हैं। जो चीज अच्छी लगती है, उससे दबाव नहीं होता, बल्कि उसमें मजा आता है।

विषाद के लक्षण

जिस समय मन में गर्मी आती है, जब आदमी बहुत गुस्सा करता है, बदले की भावना, प्रतिहिंसा की भावना, 'मरने दो साले को', 'जान से मार देंगे', ऐसे विचार आने से मन के अन्दर जो दबाव होता है उसे ही अधिक दबाव कहते हैं। ज्यादातर दबाव कम ही रहता है, लेकिन अगर अधिक दबाव ज्यादा देर तक टिके तो आदमी पागल हो जाता है। दिमाग के अन्दर करोड़ों-करोड़ों नाड़ियाँ हैं जिनमें विद्युत प्रवाह होता है। उसका भी करंट और वोल्टेज होता है। डॉक्टर और वैज्ञानिक लोग उसे यंत्रों से नापते हैं। तुम कभी इलेक्ट्रो कार्डियोग्राम (ई.सी.जी.) के लिए जाओ, उसमें एक लम्बे कागज पर आड़ी-टेढ़ी लाइन आती है। भिन्न-भिन्न बिन्दुओं पर इलेक्ट्रोड्स लगाकर प्लग लगा देते हैं, जिनसे बिजली का प्रवाह मशीन में होता है और उससे पता चलता है कि दिल कैसा काम कर रहा है। हृदय की गति को जानने के लिए उसमें बिजली कैसी चल रही है, यह पता लगाना पड़ता है। उसी तरह से मस्तिष्क में भी बिजली का प्रवाह होता है और उसे नापने के लिए जो मशीन होती है उसे इलेक्ट्रो-एनसिफेलोग्राम (ई.ई.जी.) कहते हैं।

एनसिफेलोग्राम यह बता देगा कि तुम्हारे मस्तिष्क में उस समय क्या तरंग है। तुम्हारे मस्तिष्क में विषाद है कि नहीं, तुम्हारा दिमाग गर्म है या ठण्डा। मान लो तुम बहाना करके लेटे रहो कि तुम सोये हुए हो, मगर हम एनसिफेलोग्राम लगा कर बता देंगे कि तुम सोये हुए नहीं हो, क्योंकि सोते समय बिजली की क्रिया का वोल्टेज दूसरा होता है। जब आदमी ध्यान में बैठता है उस समय बिजली की क्रिया का व्यवहार दूसरा होता है, और जब आदमी बड़ी चिन्ता में, बड़ी परेशानी में रहता है, उस समय उसके अन्दर बिजली का व्यवहार दूसरा रहता है। साधारण सोचने में, चिन्ता करने में, कम सोचने में और नहीं सोचने में, इन चारों में दिमाग का वोल्टेज अलग-अलग रहता है।

मन का प्रबंधन

यह मन कोई छोटी-मोटी शक्ति नहीं है। मन संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। जितने बड़े-बड़े चमत्कार ऋषि-मुनियों ने दुनिया में किए हैं, वह कोई जादू-टोना नहीं है, सब मन की शक्ति है। जादू-टोना कुछ भी नहीं होता। जितने भी देवी-देवता हैं, सब मन के रूप हैं। अब मुश्किल यह है कि इस मन को रोको तो आदमी पागल हो जाता है और मन को जबरदस्ती विषय-विलास में भेजो तो भी आदमी पागल हो जाता है। शादी कराओ, गृहस्थी बसाओ, तो भी पागल हो जाता है। उसे बद्रीनाथ भेजकर रातभर नाक बन्द कराकर पद्मासन में बैठा दो, तो भी पागल हो जाता है। इसे रोको तो पागल, छोड़ो तो पागल। क्या करें, बोलो? लड़के को रोज पीटें तो भी वह बिगड़ जाता है और यदि स्वतंत्र छोड़ दें तो भी बिगड़ जाता है। यही मन का भी हाल है। कबीरदास जी ने लिखा है –

मन! तोहे केहि विध कर समझाऊँ॥
घोड़ा होय तो लगाम लगाऊँ, ऊपर जीन कसाऊँ।
होय सवार तेरे पर बैठूँ, चाबुक देके चलाऊँ॥
हाथी होय तो जंजीर गढ़ाऊँ, चारों पैर बँधाऊँ।
होय महावत तेरे पर बैठूँ, अंकुश लेके चलाऊँ॥

मन मैं तुमको कैसे समझाऊँ? मेरी समझ में तो आता नहीं है। घोड़ा होता तो लगाम लगा देता, पर तुम घोड़ा नहीं हो, हाथी होता तो जंजीर से बाँध कर रखता। हे भगवान! अब तो तुम ही इस मन से बचाओ। यह मेरे समझाने से नहीं समझता। उनको भी यही समस्या रही होगी जो तुम लोगों की है। अगर समस्या नहीं रहती तो पद क्यों लिखते!

अब मन है क्या? ऋषि-मुनि कहते हैं कि मन भगवान की, परब्रह्म की प्रचंड शक्ति है। उदाहरण से समझाते हैं। मान लो एक बड़ा कमरा है, जिसमें दो हजार वॉट का बल्ब जल रहा है। कमरा चारों तरफ से बिलकुल बन्द है, लेकिन एक जगह लकड़ी में दरार पड़ी हुई है और उस दरार में से वह तेज रोशनी थोड़ी- सी चमक कर बाहर दिखाई दे रही है। बस यही मन है। भगवान की प्रचंड शक्ति जो इन्द्रियों के दरवाजे से तुमको प्राप्त हो रही है, वही मन है। ईश्वर ने ही मन को प्रकाशित किया है। खोपड़ी के माध्यम से जो तुमको दिखाई देती है बस यही भगवान की शक्ति है। हाँ, यह शक्ति सम्पूर्ण नहीं, थोड़े से छेद

से दिखाई देती है। किसी के भी पास मन की इस समस्या का इलाज नहीं है। हमने इतना बोल दिया, लेकिन कोई इलाज तो नहीं बता सके न। थोड़ा बहुत विषाद तो सबको होता है। समस्या तो यह है कि तुम लोग इतना पढ़-लिख गए हो, इतना जान गए हो कि यह अपने में एक समस्या बन गई है।

सबसे अच्छी चीज है कि घर-गृहस्थी में मन लगाओ। संसार में जितनी भी चीजें बनीं हैं, भोग विद्या, योग विद्या आदि, सबको भगवान ने प्रकृति को आश्रय बना कर, आधार बना कर प्रकट किया है। प्रकृति भगवान की शक्ति है। संसार में धन-दौलत, पति-पत्नी, बाल-बच्चे, घर-गृहस्थी आदि इन सब चीजों में मन लगाना चाहिए, अंतर्मुखी नहीं रहना चाहिए। आदमी को थोड़ी उम्र के बाद ही अंतर्मुखी होना चाहिए। हमारा तो बचपन से ही वैराग्य में बड़ा मन लगता था। जब हम स्वामी शिवानन्द जी के पास आए तब हमारा उस तरफ बहुत मन जाता था। लेकिन सन् 1947 में स्वामीजी ने हमसे कहा कि कम-से-कम चालीस साल ठहरो, अभी कुछ मत करो। केवल जो मंत्र देते हैं उसकी माला जप करो। इसके अलावा बस आश्रम का काम करो, भवन बनाओ, टाईपिंग करो, योग सिखाओ, गीता पढ़ो, रामायण पढ़ो, उपनिषद पढ़ो, यह पढ़ो, वह पढ़ो, तुम सब कुछ करो, मगर गंभीर साधना मत करो। चालीस साल रुको, उसके बाद तुम अपना जम सकते हो, उसके पहले नहीं।

इसलिए चालीस साल तक हम केवल गुरुजी का दिया हुआ मंत्र जपते थे, हम तो मन्दिर तक नहीं जाते थे। बस शाम को सात बजे सो जाते थे और रात को बारह बजे उठते थे। नहा-धोकर अपने हाथ से अपने लिए चाय बनाते थे और टाइपराईटर-कम्प्यूटर पर बैठ जाते थे। फिर एकाउंट्स देखते थे, लेख देखते थे, अनुवाद करते थे, पत्र व्यवहार देखते थे, बैंक का काम देखते थे। साढ़े तीन बजे तक सब काम हो जाता था। उसके बाद फिर उठना, मिलना-जुलना, आश्रम की व्यवस्था देखना, बाहर जाना यह सब करते थे। पर अब दूसरी चीजें करते हैं। अब तो हम चिट्ठी-पत्री भी नहीं देखते। हमें कलम छोड़े हुए बरसों हो गए, हमारा जब भी मन लगता है, तब हम अपने भगवान का नाम जपते हैं, जो गुरुजी ने कहा है। इसके सिवा और कुछ काम नहीं करते। मेरे कहने का मतलब यही है कि मनुष्य को ऐसा जीवन बिताना चाहिए कि उसका मन कहीं-न-कहीं टिक कर रहे। मन को खाली नहीं रखना चाहिए, खाली दिमाग शैतान का घर होता है।

– 24 अक्टूबर 1997, रिखियापीठ

आत्मभाव और आत्मशुद्धि

समाज सेवा के दो पक्ष हैं – एक यह कि आप दूसरों की भलाई करते हैं, दूसरा कि आप दूसरों के लिए नहीं, बल्कि अपनी शुद्धि के लिए सेवा करते हैं। दूसरों के लिए आप जो भी करते हैं, अन्ततः वह भगवान को प्राप्त होने वाला है। आप उसे भगवान को अर्पित करते हैं, इंसान को नहीं। आप केवल माध्यम हैं, प्राप्त करने वाला एकमात्र ईश्वर है। हिन्दू ईसाई और मुसलमान, सबका यही दर्शन है, सभी यही बात कहते हैं।

सामाजिक उत्तरदायित्व

एक गृहस्थ, जिसे जीवन में केवल पत्नी, बच्चों आदि में रुचि होती है, वह भी सेवा का एक माध्यम बन सकता है। परन्तु जिसने अपना घर छोड़ दिया और जिसे पत्नी, बच्चों या परिवार से कुछ लेना देना नहीं है, जीवन में उसकी क्या रुचि होनी चाहिए? यदि उसे खाने की चिन्ता नहीं, साबुन, दंतमंजन या कम्बल की चिन्ता नहीं, कोई भी चिन्ता या आवश्यकता नहीं, तब उसे सभी के लिए एक माध्यम बन जाना चाहिए। देखिए, यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। लोगों की केवल पारिवारिक जिम्मेदारी ही नहीं होती है, बल्कि सामाजिक

जिम्मेदारी भी होती है। मैं केवल अपनी संस्था के प्रति जिम्मेदार नहीं हूँ, मेरी सामाजिक जिम्मेदारियाँ भी हैं।

हमें उस सामाजिक जिम्मेदारी का निर्वाह या तो आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ईश्वर का माध्यम बन कर करना चाहिए या फिर दूसरों की भलाई के लिए अपनी सम्पत्ति का उपयोग करके। यह आपके अपने विश्वास पर निर्भर करता है। जो लोग आध्यात्मिक होते हैं, वे पहले दृष्टिकोण के अनुसार सोचते हैं और जो आधुनिक लोग हैं, वे सोचते हैं कि ठीक है, मेरी आय का कुछ हिस्सा दूसरों की भलाई के लिए जाएगा। परन्तु यह केवल गृहस्थ लोगों के लिए ठीक है, क्योंकि उनको सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियों के बीच एक सन्तुलन कायम रखने की आवश्यकता है। एक संन्यासी की कोई पारिवारिक जिम्मेदारी नहीं होती। उसका कोई यार-दोस्त नहीं होना चाहिए, उसका किसी से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। उसे केवल दूसरों की चिन्ता होनी चाहिए, विशेषकर उनकी जिनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है। एक जवान आदमी अपनी देखभाल स्वयं कर सकता है, एक जवान औरत अपनी देखभाल खुद कर सकती है, लेकिन एक बीमार, बूढ़ा व्यक्ति अपनी देखभाल नहीं कर सकता है। ऐसे लोगों से ही सामाजिक जिम्मेदारी शुरू होनी चाहिए।

यह जरूरी है, क्योंकि हम लोगों के ऊपर एक सामाजिक दायित्व है, जिसको प्राचीन भाषा में ऋण कहते थे। देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण, भूत ऋण और मनुष्य ऋण, ये जो पाँच ऋण हम पर चढ़े हुए हैं, उनको आधुनिक भाषा में कहते हैं सामाजिक दायित्व और इससे तुम कभी मुक्त नहीं हो सकोगे। हर एक व्यक्ति समाज के प्रति ऋणी है। अगर समाज न हो, तुम सुरक्षित नहीं रह सकते। समाज के प्रति तुमको अपना ऋण चुकाना पड़ेगा। पर क्या करोगे, कैसे करोगे? कोई तो रास्ता होना चाहिए, कोई माध्यम होना चाहिए। महात्मा, महापुरुष, साधु लोग इसके माध्यम होते हैं। परन्तु हम रास्ता भूल गये हैं आजकल। साधु लोग भी रास्ता भूल गये हैं, क्योंकि आप ही लोग तो साधु बनते हैं, ऊपर से तो कोई टपकता है नहीं। साधु माध्यम है आपके सामाजिक दायित्व को पूरा करने के लिए। मैं बैठा हूँ यहाँ। अगर आप दो बैल देना चाहेंगे, तो किसको देंगे? मुझे मालूम है किसको देना है। किसी को साइकिल देनी हो तो किसको देंगे? आपको तो मालूम नहीं है, मगर मुझे मालूम है किस लड़की को साइकिल देनी है। हम जब से यहाँ आए हैं, सब लड़कियाँ पढ़ने लग गयी हैं। लड़कियों में इतना जोश आया है।

चित्त की शुद्धि

सबसे बड़ी गलती हम लोगों के समाज में यह है कि मन्दिर में पाँच सौ लीटर दूध चढ़ाया जाएगा, लेकिन बीमार आदमी को पाँच लीटर दूध कोई नहीं देगा क्योंकि आदमी सोचता है कि उसे दूध देने से मुझे आशीर्वाद मिलने वाला नहीं। लेकिन शिवजी को पाँच सौ लीटर देंगे तो वे खुश हो जाएँगे, कम-से-कम हमारा मुकदमा तो खारिज हो जाएगा कोर्ट से। ऐसी हमारी श्रद्धा है! हमारी श्रद्धा पथभ्रष्ट हो गयी है। श्रद्धा को भी तो मार्गदर्शन दिया जाता है। हमारे गुरु स्वामी शिवानन्दजी कहा करते थे कि दूसरों को मदद करने का मतलब यह नहीं कि तुम उनको दवा या कपड़ा दे रहे हो। दूसरों को मदद करने का मतलब है कि तुम अपने को साफ कर रहे हो। जब तुम किसी की मदद करते हो, तब घटना कहाँ घटती है? अन्दर में चित्त तो तुम्हारा शुद्ध हो रहा है। और जब तुम्हारा चित्त शुद्ध होगा, जब तुम्हारा आईना साफ होगा, तब तुमको अपनी सूरत दिखाई देगी। समझ गए न!

जिसको तुम मन्दिर में, पत्थर में, कागज में पूज रहे हो, वह तो तुम हो। लेकिन तुम अपने को नहीं भूल पाते हो कि तुम एक बुढ़िया हो, एक दुकानदार हो, एक व्यापारी हो, एक उद्योगपति हो या एक कर्मचारी हो। तुम तो अपने आपको भगवान समझ नहीं सकोगे, क्योंकि विश्वास हो गया है कि हम बुढ़िया हैं। इसीलिए तुम शिवजी को पूजते हो, क्योंकि विश्वास हो गया है कि वे भगवान हैं। किन्तु जब तुम्हारा हृदय शुद्ध हो जाता है, तब एक आईना चमकता है जो कहता है कि उस शिला का देव मिथ्या है, सत्य जो है, वह तुम ही हो।

गीता में, वेदों में, उपनिषदों में, कितने ही ग्रन्थों में, आदि से अन्त तक पूरा यही भरा हुआ है। हमारा धर्म तो यही कहता है। हाँ, हम साकार का खण्डन नहीं करते, क्योंकि वह भी एक रास्ता है। देवी-देवता, आसन-प्राणायाम, ध्यान-त्राटक, आत्म-संयम, जो भी करो, वह रास्ता है। रास्ते की हम निन्दा नहीं करते। मगर वह रास्ता है, लक्ष्य नहीं। वह साधन है, साध्य नहीं। जब हम शिवजी, रामजी, गणेशजी या देवीजी की पूजा करते हैं, तो उसे साधन नहीं, साध्य मान कर करते हैं, करना पड़ता है। उसी को लक्ष्य मानकर करते-करते यह होता है। मगर सत्य दिखता तो है नहीं। क्यों नहीं दिखता? स्नेह, प्रेम, दया और भक्ति न होने के कारण। स्नेह जैसे भाई-बहन का होता है, प्रेम जैसे स्त्री-पुरुष के बीच होता है, दया जैसे समर्थ व्यक्ति को दुःखी व्यक्ति के प्रति होती है और भक्ति जो हमको भगवान की शक्ति के प्रति होती है। स्नेह, प्रेम,

दया और भक्ति – इन चारों से प्राण कोमल होते हैं। जैसे लोहा को गर्म करते हैं तो तरल हो जाता है, फिर उसे जैसा आकार देना चाहें, वैसा दे सकते हैं। उसी तरह से इस कठोर हृदय को तरल करने के लिए, कोमल करने के लिए इन चारों की आवश्यकता होती है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा भी है – 'स्नेह, प्रेम, करुणा, भक्ति से कोमल करो प्राण।' प्राण का मतलब यहाँ श्वास नहीं है, प्राण का मतलब है पूरा जीवन। अब प्राण तुम्हारे कोमल हैं ही नहीं, जीवन तो कोमल है ही नहीं। तुम्हारे बच्चे, घरवाली या निकट सम्बन्धी को तकलीफ हो तो तुमको चिन्ता होती है, पर वही चिन्ता पड़ोस वाले के लिए नहीं होती। हाँ, मालूम पड़ता है तो कहते हो, 'डॉक्टर को बुला दूँ क्या, टेलिफोन कर दूँ क्या?' पैसा भी दे सकते हो, गाड़ी वगैरह भी दे सकते हो, सब कुछ हो सकता है, मगर वह भाव नहीं होता जो तुम्हें अपने बीवी-बच्चों के लिए आता है।

सब प्राणियों को अपने में देखना, उसको वेदान्त में कहते हैं, आत्मभाव। ईशावास्य उपनिषद् में, कठोपनिषद् में, सभी उपनिषदों में आत्मभाव समझाया गया है। गीता में भी लिखा है -

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥6.29॥

योग में युक्त समद्रष्टा व्यक्ति, सब प्राणियों को अपने में और सब प्राणियों में अपने को देखता है। आत्मभाव के लिए यह तरीका है, मगर बहुत मुश्किल है। दूसरों के प्रति हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, वह न मेरी बीबी है, न मेरा बेटा है, न मेरा भाई है, न मेरी जात का है, न मेरे धर्म का है, न मेरे गाँव का है, उससे मेरा कोई मतलब नहीं है, मगर फिर भी उसके दुःख को देखकर कातर हो जायें, यह तो भई कोई महापुरुष ही कर सकता है। दिल हिल जाता है उन लोगों का – *संत हृदय नवनीत समाना*। लेकिन हमारा दिल किसके लिए हिलता है? जिसको हम जानते हैं, जिसके साथ हमारा प्रेम का सम्बन्ध होता है या दस-बीस साल की दोस्ती होती है। किसी ने हम पर कोई उपकार किया हो या कभी पैसा दिया हो, तो उसके प्रति चिन्ता होना तो स्वाभाविक है, पर जो तुम्हारा है ही नहीं, उसके प्रति जब यह भावना होती है, तो वह परोपकार है और वही आत्मशुद्धि का साधन भी है।

– 17 सितम्बर 1997, रिखियापीठ

आत्म-निरीक्षण

आदमी के मन में डिप्रेशन या विषाद तब होता है, जब विचारों का दबाव बहुत बढ़ जाता है, जब आदमी के मन में बहुत-से विचार एक साथ आते हैं। जैसे बम्बई के रेलवे प्लेटफार्म पर जाते हो तो कितनी आवाजें सुनाई देती हैं। लोग क्या कह रहे हैं, यह भी समझ में नहीं आता, केवल एक प्रकार की आवाज मालूम पड़ती है। ऐसे ही मन में भी होता है, अनेक विचार एक साथ आते हैं। उसको कहते हैं, क्षुब्ध अवस्था। विक्षिप्त अवस्था में विचार कम आते हैं, मगर दबाव की अवस्था में आदमी के मन में विचार बहुत आते हैं। और मजे की बात यह है कि उसको मालूम नहीं पड़ता है। यह मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है। अगर उससे पूछो कि तुम्हारे मन में विचार आते हैं क्या, तो कहेगा, 'नहीं, कुछ विचार नहीं आते हैं।'

अपने आप को देखना

दुनिया में कोई भी आदमी नहीं है जो अपने को देख सकता है। हाँ, दूसरों को देखना सबको आता है। हमको मालूम है कि तुम्हारा चेहरा कैसा है, तुम्हारे बाल कैसे हैं, तुम्हारी नाक कैसी है, तुम कैसा बोलते हो, मीठा बोलते हो या

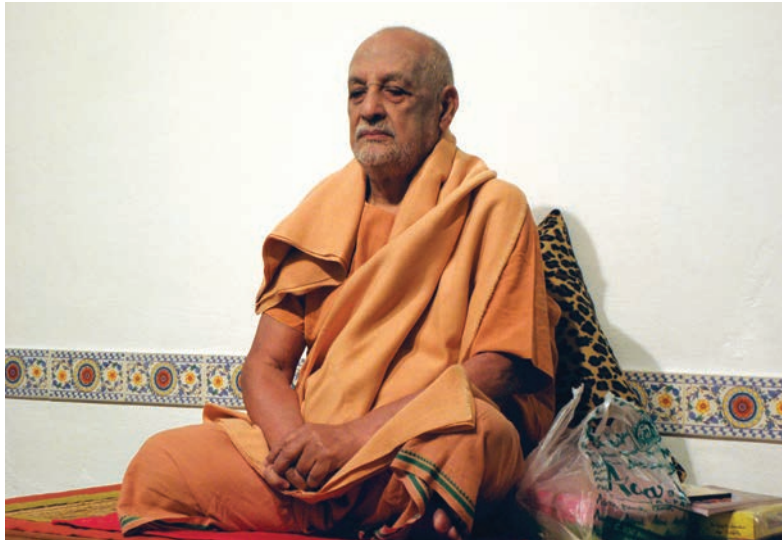

कड़वा बोलते हो, अच्छा गाते हो या खराब गाते हो, हमको यह सब मालूम पड़ जाएगा, मगर तुमको खुद कभी मालूम नहीं पड़ेगा। यह सबके साथ है। दुनिया में जितने भी जीव हैं, इस मामले में सब अज्ञान में हैं। मनुष्य स्वयं कैसा है, इसकी जानकारी दूसरे से होती है। जैसे चेहरे की जानकारी दर्पण से होती है, वैसे ही तुम्हारे स्वभाव की जानकारी निन्दा करने वाले से होती है। जो तुम्हारी आलोचना करता है, निन्दा करता है, वही तुम्हारे चेहरे का, स्वभाव का सही रंग बतलाता है। इसलिए कभी भी कोई कहे कि तुम ऐसा क्यों करते हो तो उस समय प्रतिकार नहीं करना चाहिए, न ही अपनी सफाई देनी चाहिए। कहना कि हाँ, ऐसा है, फिर उसका आत्म-निरीक्षण करना चाहिए।

आत्म-निरीक्षण के वक्त आदमी को अपने मन को न्यायाधीश बनाना पड़ता है, अपने विवेक को जज बनाना पड़ता है, जो तुम्हारी तरफदारी न करे। वकील तरफदारी करता है, मगर जज तरफदारी नहीं करता, नहीं करनी चाहिए। अपनी तरफदारी नहीं करनी चाहिए। इसको कहते हैं स्व-आलोचना। ईसाई धर्म कहता है, 'अपनी आलोचना करो'। तुलसीदास जी ने भी कहा है 'मो सम को कुटिल खल कामी।' मतलब उन्होंने स्व-आलोचना को स्वीकार किया है। बहुत मुश्किल है अपना चेहरा देखना। जब दूसरे लोग तुम्हारी तारीफ करते हैं कि तुम बहुत सुन्दर हो, बहुत विनम्र हो, बहुत अच्छा गाते हो, बहुत अच्छा लिखते हो, बड़ा अच्छा स्वभाव है, बहुत अच्छे कार्यकर्त्ता हो, बहुत सज्जन हो, तो वह भी तुम्हारा चेहरा है। हाँ, मगर क्या होता है, जब तुम्हारी निन्दा की जाती है तब तुम्हारा चेहरा लटक जाता है, तुम अपने को बचाते हो, कहते हो, 'नहीं, नहीं, मैं कहाँ करता हूँ ऐसा।'

आलोचना और प्रशंसा

आलोचना करने पर आदमी अपना बचाव ही करेगा, लेकिन जब उसको बोला जाएगा कि तुम बहुत अच्छा गाते हो, उस वक्त वह फूल जाता है, अहंकार आ जाता है। आदमी की ये दो बहुत बड़ी समस्याएँ हैं, आलोचना में बचाव और प्रशंसा में अहंकार। अब जैसे तुम बहुत अच्छा गाती हो, लता मंगेशकर की तरह ही गाती हो और तुम्हें प्रशस्ति-पत्र मिल गया, पन्द्रह हजार रुपये का इनाम भी मिल गया, तुम्हारा नाम तक अखबार में छप गया, इन सबसे मद आता है, घमण्ड आता है। मगर उसके बाद आलोचना सुन कर अपने को बचाने की प्रवृत्ति आती है। और दोनों ही गलत हैं।

आदमी को दोनों जगह अलग रवैया रखना पड़ता है। इसमें सबसे बड़ी चीज है, चिन्तन और आत्म-निरीक्षण। अगर कोई कहे कि भाई! तुम बहुत अच्छा भाषण देते हो, बहुत अच्छा लिखते हो, बहुत अच्छा नेतृत्व है, तो अपने मन में सोचना चाहिए, 'हाँ, मानते हैं ऐसा होगा। मगर देखो, गाँधीजी में कैसा नेतृत्व था, तानसेन कैसा गायक था, महाराणा प्रताप कैसे योद्धा थे, शिवाजी कैसे कूटनीतिज्ञ थे, हमारे में तो वैसा कुछ नहीं है, हमको तो और बढ़ना होगा। अब इसका उपाय क्या है?' आदमी को तारीफ में विनम्र होना चाहिए। बाहर से जो बोले सो बोले, लेकिन अन्दर भावना दूसरी होनी चाहिए। जब निन्दा होती है, आलोचना की जाती है, उस वक्त तुम्हारे मन में स्वीकृति आनी चाहिए, 'हाँ, वह सही है' और जब तुम्हारी प्रशंसा की जाती है उस वक्त स्वीकृति नहीं होनी चाहिए, उल्टा सोचना चाहिए कि 'ठीक है, स्कूल में इनाम मिल गया, पर इससे क्या होता है, दुनिया तो बहुत बड़ी है।' जैसे पेड़ फल लगने से लद जाता है, उसी प्रकार जो गुणवान् व्यक्ति होते हैं, वे गुणों के कारण दब जाते हैं। जो आदमी दबना जानता है, वह दुनिया पर राज करता है। कहते हैं जो दबता है, उसके अन्दर बहुत दम होता है। लेकिन यह जो मैं कह रहा हूँ, यह आसान नहीं है। यह एक बहुत कठिन चीज है। कबीरदास जी कहते थे –

निन्दक नेडे राखिए, आँगन कुटी छहाय।
बिन साबुन पानी बिना, निर्मल करे सुहाय॥

जो तुम्हारी आलोचना करे, उसको तुम अपने कमरे में रखो, ताकि वह बिना पानी और साबुन के तुम्हारा कपड़ा साफ कर दे। तुमको डिटर्जेंट और पानी की जरूरत नहीं है। पर ऐसा होता नहीं है। आदमी हमेशा अपनी बुराई करने वाले को उपेक्षित करता है और अपनी तारीफ करने वाले को अपने कमरे में रखता है। दुनिया में सब जगह ऐसा ही होता है।

स्वयं को दूसरों के माध्यम से जानना

सुकरात कहता था – स्वयं को जानो। उपनिषद् में कहा है – *आत्मानं विजानीहि*। रमण महर्षि भी एक ही बात कहते थे। वे तो हिन्दी वगैरह कुछ नहीं जानते थे, जब भी कोई उनके पास उपदेश के लिए जाता था, वे कहते 'नान यार' – मैं कौन हूँ, यही विचार करो। अपने को जानो, अपने को पहचानो।

अपने को पहचाने बिना ये चीजें बहुत कठिन हैं जीवन में। बहुत बार तुम परीक्षाओं से गुजरते हो। परिवार में, समाज में, संस्थाओं में बहुत परीक्षाएँ आती हैं। जहाँ भी जाओगे, चुनौतियों और परीक्षाओं को पाओगे।

आदमी को पहले अपना दोष देखना चाहिए। जब अपना दोष दिखेगा, तब तुमको पता चलेगा। दूसरे में दोष देख कर, वही दोष अपने में खोजो।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिल्या कोय।
जो दिल देखा आपना, मुझ सा बुरा न कोय॥

संत-महात्माओं ने तो पहले इसका प्रयोग किया है। दूसरे के दोष देखने की बजाय आदमी को अपने में दोष देखना चाहिए। लेकिन ऐसा होता नहीं है। अगर तुम अपने में बहुत ज्यादा दोष देखोगे तो तुम्हारा आत्म-विश्वास कम हो जाएगा। तुमको यही लगेगा कि मैं नालायक हूँ। इसलिए अपने में दोष देखना, यह प्राकृतिक नियम नहीं है। प्रकृति ने, स्वभाव ने एक नियम बनाया है कि अपना चेहरा अपने को नहीं दिखाई देवे। प्रकृति ने यह नियम सबके लिए बनाया है। किसी भी व्यक्ति को अपने दोष, अपने दुर्गुण स्वयं खोजने पर नहीं मिलते। पहले तुम उन्हें दूसरे में देखते हो कि वह बहुत आलसी है, बहुत बोलता है, बड़ा अहंकारी है वगैरह। तब तुम उन दोषों का विश्लेषण करते हो कि घमण्ड क्या है, ईर्ष्या किसे कहते हैं। ये सब चीजें पहले दूसरों में अध्ययन करोगे। अपने में नहीं मिलेंगी, चाहे तुम लाख कोशिश करो। मैं यहाँ मौजूद हर एक व्यक्ति से खुले तौर पर कह सकता हूँ कि तुम कितनी भी कोशिश कर लो, तुमको अपने में कोई दोष मिलने वाला नहीं है। दोष तुमको दूसरे में ही मिलेगा।

यह प्रकृति का नियम है। पहले दूसरे में अध्ययन किया, तब तुमको अपने बारे में पता चला। तुमको कैसे पता कि आँख ऐसी होती है? तुमने दूसरे की आँख देखी, नाक देखी, होंठ देखे, बाल देखे, ललाट देखा, तब जाकर तुमको पता चला कि मेरा

भी ऐसा ही होता होगा। प्रकृति ने अपने को जानने के लिए दूसरे को बनाया है। दूसरा आदमी तुम्हारा दर्पण है। वह तुमको बताता है कि गुस्सा क्या होता है। तुमको क्या मालूम कि गुस्सा क्या होता है? तुमको तब मालूम पड़ेगा जब तुम्हारे सामने दूसरा आदमी खूब गुस्सा करेगा। तब तुम सोचोगे, 'यह बड़े गुस्से में है, अच्छा तो गुस्सा इसको कहते हैं। हमारे माता-पिता हमें बहुत प्रेम करते हैं, तो यह प्रेम है।' प्रेम क्या है, क्रोध क्या है, नफरत क्या है, यह तुम जिन किताबों से सीखते हो, वे किताबें हैं तुम्हारे आसपास के लोग। तब फिर उस दोष को अपने में ढूँढ़ना पड़ता है। इसके पहले अपने में बुराई खोजना गलत है। इसलिए पहले तुम दूसरे की निन्दा करते हो।

दूसरे की निन्दा करना एकदम स्वाभाविक है। यह मानवीय समझ के विकास-क्रम में प्रकृति का नियम है। अगर तुम शुरू से कहो कि हम नालायक हैं तो तुमको यही नहीं मालूम कि नालायक किसको कहते हैं, खाली तुमने एक मत बना लिया कि हम नालायक हैं, बेकार हैं, बिना यह जाने कि इसका मतलब क्या है। उससे व्यक्तित्व को चोट पहुँचती है। हाँ, इसी तरह आदमी दूसरे की तारीफ भी करता है, 'वह बहुत सुंदर है, वह बहुत अच्छा गाती है, वह बहुत अच्छी है'। लेकिन क्या तुम्हें मालूम है कि सुंदर क्या है? सुरीला स्वर क्या है? अच्छाई क्या है? पहले जानो कि सुंदरता क्या है, संगीत क्या है, अच्छाई क्या है, तब वह अपने में मालूम पड़ेगा। नहीं तो 'मैं बहुत अच्छी हूँ', यह अहंकार हो गया। इसलिए जीवन को बनाने के लिए प्रकृति ने जो नियम बनाए हैं, उनको समझना चाहिए। कोई तुम्हारी आलोचना करता है, बुराई करता है, करने दो। चुप रहो। प्रतिकार मत करो। और जब तुम दूसरे की निन्दा करते हो, तब उस समय अपने में छानबीन करो कि कहीं मेरे में तो दोष नहीं है।

स्वयं को जानना दुनिया में सबसे मुश्किल चीज है। दुनिया में आदमी सब चीज जान सकता है, लेकिन अपने को नहीं जान सकता। अपने को जानना ही आत्म-साक्षात्कार है। यह सामान्य उपलब्धि नहीं है, बहुत ऊँची उपलब्धि है। हम लोगों को अभी यह उपलब्धि नहीं हुई है। हम लोग सब गप्प लगाते हैं कि आप बहुत अच्छे हैं, बहुत पहुँचे हुए हैं। स्वयं को जानना जीवन की महानतम उपलब्धि है। उपनिषदों ने इसे आत्मज्ञान कहा, किसी ने ईश्वर-साक्षात्कार कहा। स्वामी शिवानन्दजी कहा करते थे दोनों एक ही हैं, अपने को जानना और भगवान को जानना बराबर है।

– 30 अक्टूबर 1997, रिखियापीठ

परमार्थ और संकीर्तन

शिष्यों को गुरु आदेश का पालन करना चाहिए। हमसे अगर पूछा जाए कि आपका आदेश क्या है, तो हम एक ही बात कहेंगे, 'तुम केवल अपनों के लिए मत जीओ, थोड़ा-सा दूसरों के लिए भी जीना सीखो।' सारी दुनिया के सुख-दुःख में तुम पूरे शरीक नहीं हो सकते, यह केवल भगवान के लिए सम्भव है, परन्तु किसी-न-किसी रूप में, किसी-न-किसी दुःखी व्यक्ति के दुःख में शरीक होना, यह हमारे मन की बहुत बड़ी भावना है।

यदि हर एक आदमी केवल एक मोमबत्ती जलाये, तो भी इतना उजाला हो जायेगा कि चारों और प्रकाश ही प्रकाश रहेगा। हम लोग मोमबत्ती केवल अपने घर में जलाते हैं। मेरा पति, मेरी पत्नी, मेरे बच्चे – बस, यही हम लोगों का संसार हो गया है। बाकी लोगों से हमारा सिर्फ स्वार्थ का सम्बन्ध है। ऐसा नहीं होना चाहिए। पूजा-पाठ, तीर्थ, साधनाएँ, नौकरी-चाकरी, देश-सेवा अपनी जगह हैं, पर यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे अंदर परमात्मा का प्रकाश प्रकट हो, तो तुमको अपने दिल को थोड़ा-सा विशाल बनाना पड़ेगा।

अपने हृदय में अपरिचितों के लिए, किसी-न-किसी अभागे के लिए दया-ममता लानी पड़ेगी। केवल जुबानी सहानुभूति से काम नहीं चलता, 'ओहो! बेचारा बड़ा दुःखी है। क्या-क्या उसके कर्म हैं?' यह दर्शन और कुछ नहीं, केवल अपने क्षुद्र मन का बचाव करने के लिए है। एक गिलास चाय ही पिला दो उसको, और क्या? दरवाजे पर आए हुए भिखारी को यह कहकर लौटाना नहीं, 'अरे, आजकल ये सब ठग हो गये हैं।' यह गलत बात है। कोई आदमी, कितना ही बदमाश हो, कभी तुम्हारे दरवाजे पर तुमको ठगने नहीं आयेगा। नहीं, ईमानदारी की बात बोलता हूँ। मैं तो वह जीवन जी चुका हूँ, इसलिए कह रहा हूँ। मुझे भी लोग ऐसा ही कहते थे कि सबको ठगता है। शायद अभी भी कहते होंगे। अरे भाई, क्या ठगेगा, कितना ठगेगा? एक भिखारी सुबह से शाम तक कितने घर के चक्कर मार सकता है? आठ घण्टे की भी नौकरी करेगा तो सोलह घरों में जायेगा। हर घर से अगर दो रुपये मिलेंगे तो कुल बत्तीस रुपये मिलेंगे, ज्यादा क्या मिलेगा उसे?

सोच लो, मेरी बात गलत है कि सही। तुम अपनी समझ से काम लो। तुम कहते हो, 'आजकल सब ठग हो गए हैं, साधु भी ठग हो गए हैं, भिखारी भी

ठग हो गए हैं, शराब पीते हैं।' अरे, बत्तीस रुपये में क्या शराब पीयेगा? नहीं, दरवाजे पर आये हुए भिखारी को लौटाना नहीं। यह पहला नियम हमने बताया। चूड़ा, प्याज और नमक रख लो, खाना तैयार नहीं है तो उसे चूड़ा ही पत्तल में डालकर दे दो।

भिखारी के अंदर जो आत्मा है, जो प्रकाश है, वही प्रकाश तुम्हारे अंदर है। जो बिजली इस बल्ब में है, वही बिजली उस बल्ब में है। जो बिजली देवघर में है, वही बाँका में है। आत्मा तो सबमें एक ही है। केवल सर्किट अलग-अलग हैं। तुम्हारा सर्किट और मेरा सर्किट अलग हो गया। इसलिए मैं बटन चालू करता हूँ तो मेरी बिजली जलती है, तुम्हारी नहीं। वह सर्किट क्या है? वह अहंकार का सर्किट है। अगर अहंकार मिट जाये तो मेरी बिजली जलने से सबकी जल जाये, मेरी बुझे तो सबकी बुझ जाये। यही आत्मभाव है।

आत्मभाव का मतलब होता है, 'अपने जैसा'। तुम्हारा बेटा बीमार पड़ता है, तो क्या होता है? तुमको पता ही है। लेकिन बगल में किसी दूसरे का बेटा बीमार पड़ता है तो तुम बोलते हो, 'अच्छा, वह बीमार पड़ा है? उसे कॉर्टिसोन दे दो न।' बस! वहीं तक, उसके आगे तुम्हें कुछ नहीं होता। तुम आराम से सो जाओगे, तुमने अपना काम कर दिया। लेकिन क्यों न उसके लिए दवाई मँगा दो, डॉक्टर को बुला दो, फोन ही कर दो, यह सब कुछ तुम कर सकते हो। एम्बूलेंस से डॉक्टर के पास पहुँचा भी सकते हो। मगर जो भाव अपने बच्चे की बीमारी से तुम्हारे अन्दर पैदा होता है, वह दूसरे के बच्चे की बीमारी से नहीं होता। क्यों? आत्मभाव नहीं है। वेदान्त में पहली शिक्षा है, आत्मभाव। पहले ही उपनिषद्, ईशावास्य उपनिषद् में लिखा है, 'तेरा दुःख मेरा दुःख बने, उसका दुःख मेरा दुःख बने।'

हमारे मन में सबके लिए दया, करुणा और अपनत्व का भाव आना चाहिए। राजा शिबि की तरह अपने खून, अपने माँस को भी दान में देना चाहिए। तुम्हारी कमाई की पूरी सौ कौड़ियाँ तुम्हारी नहीं हैं। तुम्हारा अपने धन पर सम्पूर्ण अधिकार नहीं है। तुम्हारे उस धन में मेरा अंश भी है। 'मेरा' का तात्पर्य स्वामी सत्यानंद सरस्वती मत समझना। इसका अर्थ हुआ कि

उस धन पर अन्य लोगों के अधिकार भी हैं। अपने कर्म, व्यापार या अन्य साधनों से तुम जो कुछ अर्जित करते हो, उस पर अपना आंशिक अधिकार ही समझो। अन्य के हिस्से भी उसमें सन्निहित हैं। यह अध्यात्म की बात है।

तुम एक अकेले आदमी नहीं हो। तुम सारी सृष्टि की इस कड़ी में एक कड़ी हो। अगर तुम टूट गये तो सब टूट जायेगा। दुनिया में सब अपने बीवी-बच्चों के लिए कमाते हैं, जिस के साथ मोहब्बत हो जाए उसके लिए कमाते हैं, और बाकी सबको बाहर कर देते हैं। नहीं, गरीब आदमी हो, कंगाल आदमी हो या अमीर आदमी हो, उसका अपनी कमाई पर, अपनी जिन्दगी पर सम्पूर्ण हक नहीं है। और अगर तुम पूरा हक लेते हो, तो हमारे हक को छीनते हो। अपनी कमाई के दस प्रतिशत पर तो तुम्हारा हक है ही नहीं। यदि तुम एक सौ रुपये कमाते हो तो उसमें से दस रुपये का अंश बिल्कुल भूल जाओ। वह तुम्हारा नहीं है। यदि मैं तुम जैसे धनवान् से नहीं, बल्कि किसी विपन्न भिखमंगे से बात कर रहा होता, तब भी यही कहता कि यदि वह प्रतिदिन बीस रुपये भीख से कमाता है, तो उसमें से दो रुपये पर उसका अधिकार नहीं होगा। इसे समाजशास्त्र के रूप में न भी मानो तो भी यह आध्यात्मिक विज्ञान तो है ही। मैं दान की या समाजवाद की बात नहीं करता हूँ। मैं उस अध्यात्मवाद की बात करता हूँ जिसमें तुम्हारी सोच यह होनी चाहिए कि तुम एक विराट् के अंश मात्र हो और तुम्हारा जो कुछ भी है, उसमें उसका भी एक अंश सन्निहित है।

यह आध्यात्मिक ज्ञान मुझे 1990 में जुलाई के महीने में मिला। तब मैंने सोचा, 'स्वार्थ बहुत हो गया। मैंने अविद्या से मुक्त होने के लिए, मोक्ष के लिए बहुत प्रयत्न किया, मगर मोक्ष नहीं मिला। मैंने भगवान के दर्शन के लिए बहुत प्रयत्न किया, मगर भगवान नहीं मिले।' तब मैंने परमार्थ का काम शुरू किया, उसके बाद मुझे बराबर भगवान की आवाज सुनाई देती है।

हमारा दूसरा आदेश है, 'अपने घर में भगवान के नाम का कीर्तन करो, जैसा यहाँ होता है।' मैं भजन की बात नहीं बोल रहा हूँ। मैं नाम-संकीर्तन की बात बोल रहा हूँ। नाम-संकीर्तन का मतलब होता है, भगवान का नाम गाना। केवल नाम। चाहे 'हरे राम, हरे राम' गाओ, या कुछ और, यह नाम-संकीर्तन है। यह नाम-संकीर्तन दस-पन्द्रह मिनट घर में जरूर करना चाहिए। नाम-संकीर्तन और परमार्थ, इन दो चीजों से तुम लोगों को बहुत कुछ मिलेगा। लोक और परलोक, दोनों मिलेंगे।

– नवम्बर 2000, रिखियापीठ

श्रद्धा और विश्वास

हर मनुष्य के अन्दर, चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या गँवार, एक चीज जरूर है। मैं दिमाग की बात नहीं बोल रहा हूँ, दिमाग तो है ही, बुद्धि भी है, तर्क भी है, लेकिन एक अलग चीज है, जिसको कहते हैं विश्वास। और विश्वास हमेशा अन्धा होता है।

अब यदि यह विश्वास ठीक-ठीक बैठ गया तो फिर आदमी विष्णु भी बन सकता है और शंकर भी। लेकिन उस विश्वास में कहीं पर भी, थोड़ी-सी भी खटाई नहीं पड़नी चाहिए। विश्वास में खटाई पड़ती है तो अपनी ही खोपड़ी से पड़ती है। आदमी आजकल बी.ए., बी. कॉम. पढ़ लेता है तो सोचता है कि मैं बहुत जानता हूँ, गुरु को आजमाकर देखूँगा। नहीं, विश्वास आजमाने की चीज नहीं है। विश्वास के लिए श्रद्धा का होना आवश्यक है। श्रद्धा और विश्वास को शिव और पार्वती का रूप माना जाता है।

भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

श्रद्धा और विश्वास के ये दो रूप हैं, भवानी और शंकर, जिनके बिना योगी भी अपने अन्दर में रहने वाले भगवान को नहीं देखते हैं। माल अपने

अन्दर है, लेकिन दिखता नहीं है। उसे देखने के लिए श्रद्धा और विश्वास की जरूरत पड़ती है।

जिस दिन हम पैदा हुए, अजनबी की तरह यहाँ आए। यह दुनिया तो हमारे लिए अजनबी थी। और जिस माँ की गोद में हम पैदा हुए, उसके लिए भी हम अजनबी थे कि यह कहाँ से आ गया। पर अजनबी होते हुए भी हमने एक-दूसरे के साथ धीरे-धीरे सम्बन्ध बनाना शुरू कर दिया। ज्यादा दिन तक अजनबी रहने में मजा नहीं आता है। हम लोगों ने जो रिश्ते कायम किए हैं, वे तो मान्यताएँ हैं। यह मेरा बेटा है, काम खतम। इसमें कोई शक नहीं है। यही श्रद्धा और विश्वास है।

विश्वास और श्रद्धा बड़ी विचित्र होती है। जहाँ एक बार जम जाती है, वहाँ अटक जाती है, एकदम फिट हो जाती है। हमने जब घर छोड़ा तब हम ढूँढते-ढूँढते कई जगह गए कि किस दुकान में माल मिलेगा, पर कहीं मिला ही नहीं। एक-के-बाद-एक जगह छोड़ते ही चले गए। वैसे सब लोग अच्छे ही थे। आखिर में उदयपुर, राजस्थान में एक महात्मा के यहाँ हम छः महीने रहे। वे काफी बूढ़े थे, पर बहुत अच्छे थे। उन्होंने तंत्र के बारे में हमको सब सैद्धांतिक जानकारी दी। वे हमारे बारे में सोचते थे कि अच्छा जवान लड़का है, पढ़ा-लिखा है, एकदम तेज-तर्रार है, आश्रम सम्भालेगा। पर हमारा मन लगा नहीं। किसलिए मन नहीं लगा, हमको नहीं मालूम। वे बहुत अच्छे आदमी थे, ख्याल भी किया हमारा, समयाचार तंत्र, कौलाचार तंत्र तो फलाना तंत्र, सब हमको सिखलाया भी। एकदम बारीकी में वह सब समझाया, जो हम आज बोलते हैं। पर हम वहाँ से भाग गए। हमने सोचा, 'नहीं, ये हमको फिट नहीं बैठते।'

वहाँ से हम किसी तरह ऋषिकेश पहुँचे। ऋषिकेश में काली कम्बलीवाले के यहाँ गए, उन्होंने हमें एक गुरुद्वारे में ठहराया। दूसरे दिन कुमाऊँ का ही एक आदमी, जो वहाँ मैनेजर था, आया। उसे पता लगा कि कुमाऊँ से कोई लड़का आया है, अठारह-बीस साल का। बहुत छोटी उम्र थी उस समय हमारी। हमने कहा, 'हम यहाँ काम खोजने नहीं, गुरुजी की खोज में आए हैं।' उसने कहा, 'तब तुम कैलास आश्रम जाओ।' कैलास आश्रम में स्वामी विष्णुदेवानन्द जी के पास गए, उनसे कहा, 'हम संन्यास के लिए आए हैं।' वे बोले, 'हम तो संन्यास देते नहीं हैं। तुम कहीं और से संन्यास ले लो और यहाँ आ जाओ, हम तुमको वेदान्त आदि के ग्रन्थ पढ़ा देंगे।'

हमने पूछा, 'तो हम कहाँ संन्यास लेंगे?' उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी के बारे में बता दिया। हम वहाँ गए और स्वामीजी को देखते ही हमारा मन फिट बैठ गया। फिर वहाँ से हम कभी टले ही नहीं। कभी मन ही नहीं किया। बहुत छोटा-सा आश्रम था स्वामी शिवानन्द जी का। न रहने के लिए जगह थी, न शौच के लिए। जंगल में जाना पड़ता था। खाने का भी कोई हिसाब नहीं था। रोज नौ बजे तीन मील चल कर काली कम्बलीवाले के यहाँ से भिक्षा लानी पड़ती थी। न कम्बल का हिसाब, न पानी का, कुछ भी नहीं था। कभी पीलिया हो गया, कभी हेपाटाइटिस, कभी मलेरिया, तो कभी कुछ हो गया। लेकिन एक बार जो वहाँ मन लग गया, फिर वहाँ से हटा नहीं।

कहने का मतलब यह कि जहाँ जिसका मन लग जाता है, जहाँ जिस पर विश्वास हो जाता है, वहाँ फिर दुविधा नहीं रहती। यह बात हमेशा याद रख लो। दुविधा है तो विश्वास खण्डित है। जिस तरह मनुष्य के अन्दर बुद्धि है, तर्क है, उसी तरह मनुष्य के अन्दर एक तत्त्व है, जिसे कहते हैं विश्वास। सच पूछो तो ईश्वर की अवधारणा विश्वास के ही आधार पर है। और ऐसा विश्वास तो हमेशा अंधविश्वास ही रहता है। अब इस विश्वास का जो फायदा उठाना चाहे, उठाएगा। विश्वास नहीं तो जीवन में कुछ नहीं।

– 14 जनवरी 2009, रिखियापीठ

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान 'SB Collect Online Donation Facility' के माध्यम से निम्नलिखित वेबसाइट द्वारा सीधे दिया जा सकता है – **https://www.onlinesbi.sbi/sbicollect/icollecthome.htm?corpID=2277965**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

गुरुकृपा हि केवलम्

स्वामी गोरखनाथ सरस्वती

पृष्ठ 150, ISBN: 978-93-94604-95-7

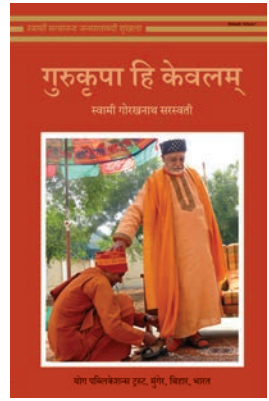

भारतीय आध्यात्मिक परम्परा में गुरु-शिष्य सम्बन्ध का शिरोमणि स्थान है। इस पुस्तक में स्वामी गोरखनाथ सरस्वती ने गुरु-शिष्य सम्बन्ध के विभिन्न आयामों को अपने व्यक्तिगत अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जैसे महान् गुरु और युगपुरुष के सान्निध्य और मार्गदर्शन में बितायी लगभग चालीस वर्षों की समयावधि को बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत करने वाली यह पुस्तक वस्तुत: गुरु-चरणों में समर्पित एक भावभीनी श्रद्धांजलि है।

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए) एवं कार्यक्रम

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं
- स्वस्थ जीवन हेतु *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर *यौगिक जीवनशैली साधना* का कार्यक्रम उपलब्ध है

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2023

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जुलाई 2022–जुलाई 2024	आश्रम जीवन प्रशिक्षण
जुलाई 1–दिसम्बर 31	योग चक्र अनुभव

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ